

# श्री जैन सत्य प्रकाश



वर्ष ३

अंक ४

क्रमांक २८

तंत्री: शाह, यीमनलाल गोडणदार

# श्री जैन सत्य प्रकाश

( मासिक पत्र )

वि-५-५-६-१-न



१ श्री सिद्धाचलस्वामिस्तोत्र	: आ. म. श्री विजयपद्मसूरिजी	११७
२ दिगंबर शास्त्र कैसे बने	: मु. रा. श्री दर्शनविजयजी	११८
३ सम्यग्दर्शन	: आ. म. श्री विजयपद्मसूरिजी	१२३
४ श्री हस्तिनापुर तीर्थक्षप	: मु. रा. श्री न्यायविजयजी	१२७
५ दो ऐतिहासिक रासोंका सार	: श्रीयुत अजरचंदजी नाहटा	१३४
६ महाकवि श्री धनपाल	: मु. रा. श्री सुशीलविजयजी	१३८
७ श्री दशवैदिक सूत्र	: मु. रा. श्री दक्षविजयजी	१४१
८ भोक्षमां लोकोत्तर गमनं यत् नथी ?	: श्रीयुत शंकरनाथ आपडिया	१४४
९ वस्तुपालना दादा सोमनो शिललेख	: श्रीयुत कनैयानाथ दवे	१४८
१० पं. इन्द्रचंद्रजीसे	: मु. रा. श्री ज्ञानविजयजी	१४९
११ मांडवगढ संबंधी शिलालेख	: श्रीयुत नंदलालजी लोढा	१५३
१२ श्री सरस्वती स्तोत्र	: आ. म. श्री विजयपद्मसूरिजी	१५६
समाचार		१५६ सामे

## लयाजम

स्थानिक देव इपियो

अहारगाम भे इपिया

छुटक अंक वणु आना

मुद्रक : चंद्रशंकर उमाशंकर शुक्ल, प्रकाशक : श्रीमनदास गोक्षणदास शाह, मुद्रणस्थान : युगधर्म मुद्रणालय सदापोस कोस रोड अमहावाह, प्रकाशनस्थान : श्री जैनधर्म सत्यप्रकाशक समिति कार्यालय, जेशिंगवाडीनी वाडी, धीकांठा, अमहावाह.

णमो त्थु णं भगवओ महावीरस्स

सिरि रायनयरमज्जे, संमीलिय सव्वसाहुसंमइयं ।  
पत्तं मासियमेयं, भव्वाणं मग्गयं विसयं ॥ १ ॥

# श्री जैन सत्य प्रकाश

पुस्तक ३

: कुमांक २८ :

अंक ४

विक्रम संवत् १९९४ :  
कार्तिक सुदी १५

वीर संवत् २४९४  
सोमवार

: सन १९३७  
नवेम्बर १५

## ॥ सिद्धाचलस्वामि-स्तोत्रम् ॥

कर्ता:—आचार्य महाराज श्रीमद् विजयपद्मसूरिजी  
(गतांकथी पूर्ण)  
॥ आर्यावृत्तम् ॥

अद्भुतरसयकूडे—पिअंकरे पीइमंडणे मउडं ॥  
अभिणंदण सुमइणगे—उसहजिणेसं पणिवयामि ॥ १२ ॥  
खिइमंडलमंडणुमा—संभुणगे सव्वकामए ज्जिणयं ॥  
मरुदेवाणंद महं—सहस्सपत्ते पणिवयामि ॥ १३ ॥  
पुज्जसिबंयरणाहं—वंदे पायालमूलठियचरणं ॥  
तह पुण्णकंदणाहं—पढमपहुं सव्वया वंदे ॥ १४ ॥  
अद्भुतरसयणामे—णगे ठियं पढमतित्थयरपायं ॥  
आसण्णसिद्धिभावा—भव्वा अच्चंति पणमंति ॥ १५ ॥  
तुज्ज नमो णाह ! नमो—थवणा जाओऽज्ज मे महाणंदो ॥  
सरणं तुज्ज पयाणं—भवे भवे होउ इय वंछा ॥ १६ ॥  
भीमभयणियमणुया—जत्ताकरणेण जस्स सुहभावा ॥  
इह पावंति पसंति—आरुग्गं परभवे मुत्ति ॥ १७ ॥  
द्विब्बक्खिदाणइक्खं—णिज्जामगसेहरं भवद्धिसि ॥  
ओहीविमलगिरीणं—णमो णमो इय सरंतु णरा ॥ १८ ॥  
थुत्तमिणं पढणाय—ण्णणायरड्ढाण तित्थरसियाणं ॥  
वियरइ अप्पियकमला—समत्थविग्घाइ विहडेइ ॥ १९ ॥  
तवगणगयणदिवायर—गुरुवरसिरिणेमिसूरिसीसेणं ॥  
वायगगणिपोम्मेणं—जइणउरीरायनयरंरि ॥ २० ॥  
णहणंदणिहिंदुसमे—गणहरसिरिपुंडरीयमुत्तिदिणे  
सिरिविमलायलथुत्तं—विहियं संघस्स पढणट्ठं ॥ २१ ॥

## दिगंबर शास्त्र कैसे बने ?

लेखक:-मुनिराज श्री दर्शनविजयजी

( गतांक से क्रमशः )

### प्रकरण १५-आ० जिनसेन आ० गुणभद्र

दिगम्बर साहित्यमें द्रव्यानुयोगका ग्रंथ बन चुका था, अब प्रथमानुयोग ( कथानुयोग )की कमीना थी । आ० जिनसेन और आ० गुणभद्रने उस कामको अपने शिर पर उठाया और दिगम्बर समाजको अच्छा साहित्य समर्पित किया ।

आ० जिनसेन धवलग्रन्थके निर्माता आ० वीरसेनके शिष्य हैं । आपने आ० जयसेनके पास विद्याध्ययन किया है । जैसा कि—

सिद्धान्तोपनिबद्धानां, विधातुर्मद्गुरोश्चिरं ।  
मन्मनःसरसि स्थेयान्मृदुपादकुशेशयम् ॥

—आदिपुराण प्रस्तावना, श्लो० ५७

जन्मभूमिस्तपोलक्ष्म्याः, श्रुतप्रशमयोर्निधिः ।

जयसेनगुरुः पातु, बुधवृन्दाग्रणी स नः ॥

—आदिपुराण उत्थानिका, श्लो० ५८ या ५९

आ० वीरसेनके आ० जिनसेन हुए ।

—उत्तरपुराण ।

श्रीमान् प्रेमीजीका मत है कि-आदिपुराणके निर्माता आ० जिनसेनके विद्यागुरु आ० वीरसेन हैं और दीक्षागुरु आ० जयसेन हैं ।

—विद्वद्वरत्नमाला, पृ० ३९

आपकी परंपरा इस प्रकार है-(१) कोण्डकुन्द, उमास्वाति, गृद्धपीच्छ, समन्तभद्र, शिवकोटि, देवनन्दी, जिनेन्द्रबुद्धि, पूज्यपाद, भट्टाकलंक, जिनसूरि, गुणभद्र, पुष्पदंत और भूतबलि तथा अर्हद्वलि ।

—श्र० बे० शि० नं० १०५ श्लोक १३ से २७, शक सं० १३२० ।

यह परंपरा कुछ क्रमवर्ति आचार्योंके नामरूप है । क्योंकि आ० उमास्वाति, आ० समन्तभद्र श्वेताम्बर आचार्य हैं, यह बात उनके प्रकरणोंमें साफ सप्रमाण लिख दी है । आ० पूज्यपाद व भट्टाकलंक भी न गुरु-शिष्य हैं, न निकटवर्ति हैं और आ० गुणभद्रके बाद आ० भूतबलि होते तो उनके दादागुरु आ० वीरसेन धवलाकी रचना कैसे करते ? इत्यादि कारणोंसे यह लेख झूठा माना जाता है । दिगम्बर समाजकी प्राचीनताको सिद्ध करनेवाले लेख करीब करीब ऐसी ही कक्षाके होते हैं । हां, श्रवणबेलगुलके शिला-लेखमें एक यही लेख है कि जसमें वीरसेनका नहीं किन्तु सीर्फ आ० जिनसेन और आ० गुणभद्रके नाम उत्कीर्ण हैं ।

(२) आ० वीरसेन, आ० पद्मनंदी, आ० जिनसेन, आ० विनयसेन ( बड़े गुरुभ्राता ) और आ० गुणभद्र ।

—दर्शनसार, गाथा—३१, ३२

यह पट्टधर परंपरा है । इसमें आ० वीरसेन, आ० जिनसेन \* तथा आ० गुणभद्रके बीचमें और एक एक पट्टधर हुए हैं ।

आपका श० ६७५ ( वि० सं० ८१० ) में जन्म, और श० ७६५ ( वि० सं० ९०० ) में स्वर्ग हुआ है— ( आदिपुराणकी हीन्दी प्रस्तावना )

आपने आ० वीरसेनके शिष्य आ० विनयसेन ( बड़े ) के कहनेसे ३६४ मन्दाक्रान्तावृत्तमें “ पार्श्वभ्युदय ” काव्य बनाया ( पार्श्वार्थ श्लो० ७१ ) तथा आदिनाथपुराणका निर्माण किया ।

श्रीमान् प्रेमीजी लिखते हैं कि—जयधवला और वर्धमानपुराण भी आपकी कृति है ।

आ०गुणभद्र आपके शिष्य हैं ।

आ०गुणभद्र, आ०जिनसेन और दशरथ गुरुके शिष्य हैं ( उत्तरपुराण प्रशस्ति श्लोक—१३ ) तथा उनके शिष्य लोकसेन हैं कि जिन्होंने उत्तरपुराण की रचनामें स्वगुरुको सहारा दिया ( उत्तरपुराण, प्रशस्ति श्लोक—२५ ).

आ०गुणभद्रने आदिपुराण शेषभाग श्लो०—१६२०, उत्तरपुराण श्लो० ८०००, आत्मानुशासनम् श्लो० २७२× की रचना कि ।

आत्मानुशासनमें इस श्लोकके बाद २७२ संख्या तकके श्लोक हैं । अंतमें ग्रन्थकारका नाम नहीं है । अंतके दो श्लोक तो ग्रन्थकर्ताकी तारीफसे हैं ।

दिगम्बर साहित्यमें ब्रजकथाग्रंथ “ महापुराण ” है, जो इन दोनों आचार्यकी रचना है ।

१. आ०जिनसेनने आदिपुराणके पर्व ४३ श्लोक ३ पर्यन्त १०३८० श्लोक बनाये, बादमें आपकी मृत्यु हो गई ।

\*आ० जिनसेन पांच हुए हैं—

१. आदिपुराणके कर्ता, २. हरिवंशपुराणके कर्ता, ३. मल्लिषेणाचार्यकी महापुराणप्रशस्तिमें उल्लिखित, ४. हरिवंशपुराणकी प्रशस्तिमें सूचित और ५. सेनगणकी पट्टावलीमें भ० सोमसेनके पट्टधर ।

—ग्रन्थपरीक्षा, भा० २, पृ० ४७ ।

\*जिनसेनाचार्यपाद—स्मरणाधीनचेतस्त्राम् ॥

गुणभद्रभदन्तानां, कृतिरात्मानुशासनम् ॥

—आत्मानुशासनम्, श्लो० २३९

२. आ०गुणभद्रने आदिपुराणके ही शेष १६२० श्लोक बनाये, १२००० श्लोक प्रमाण ४७ पर्वमें आदिनाथपुराण समाप्त हुआ। बादमें ८००० श्लोक प्रमाण उत्तरपुराण (२३ तीर्थंकर व चक्रवर्तिका चरित्र) भी बनाया।

इन आदिपुराण और उत्तरपुराणके जोड़का ही नाम “महापुराण” है जिसकी समाप्ति शक सं० ८२० वि० सं० ९५५में हुई है।

दिगंबरीय मतानुसार वि० सं० ९५५में न गणधरकृत आगम थे, न पूर्व थे, न दृष्टिवाद था, न दृष्टिवादके तीसरे हिस्सेका तीर्थंकर चरित्र था, वि० सं० ३०५में ही तीर्थंकरचरित्र विनष्ट हो गये थे, और ये आचार्य भी न सातिशय ज्ञानवाले थे, अतः यहाँ प्रश्न उठता है कि इन आचार्योंने महापुराणका मसाला कहाँसे प्राप्त किया?

जांच पड़तालके बाद सप्रमाण कहा जाता है कि—महापुराणकी रचनामें काणभिक्षुका कथाग्रन्थ (आदि० उत्थानिका श्लोक ५१), कवि परमेश्वरकृत पुरुचरित्र (आदि० उ० श्लो० ६०; आदि० प्रशस्ति श्लो० १६), आ० जटिलकृत वरांगचरित्र और वाल्मीकी रामायण इत्यादि ग्रन्थों का सहारा लिया गया है। साफ साफ कहना चाहिये कि—आचारांगसूत्र भावनाध्ययन, श्रीकल्पसूत्र और आवश्यक निर्युक्ति इत्यादि श्वेतांबरीय साहित्यकी सरासरी नकल करडाली है।

वरांगचरित्र भी श्वेतांबर ग्रन्थ है और वह उस समयका श्रेष्ठ संस्कृत ग्रन्थ है। देखिए:

जेहिं कप रमणिजे, वरंग—पउमाणचरियवित्थारे ॥

कहवणसलाहणिजे, ते कइणो जडिय—रविसेणो ॥

—आ० उद्योतनस्रिकृत कुवलयमाला (इ० ७७८)

वरांगनेव सर्वाङ्गैर्वरांगचरितःर्थवाक् ॥

कस्य नोत्पादयेद् गाढमनुरागं स्वगोचरम् ॥ ३५ ॥

—आ० जिनसेनकृत हरिवंशपुराण परि० (इ० सं० ७८३)

काव्यानुचितने यस्य, जटाप्रबलवृत्तयः ।

अर्थान् स्माऽनुवदन्तीव, जटाचार्यः स नोऽवतात् ॥ ५० ॥

—आ० जिनसेनकृत आदिपुराण अ० १ । इ. स. ८३८)

मुणि महसेणु सुलोयणु जेण, पउमचरिउ मुणि रविसेणेण ।

जिणसेणेण हरिवंसु पवित्तु, जडिलमुणिणा वरंगचरित्तु ॥

—कवि धवलकृत अपभ्रंश हरिवंश ( इ. स. ११वीं शताब्दी )

वरांग चरित्रकी ताडपत्र पर शक सं. १६५८में लिखी हुई सीर्फ एक प्रत कोल्हापुरके लक्ष्मीसेन मठमें सुरक्षित है। जिसके १४८ पत्र हैं। सार्थक नामवाले ३१ अध्याय हैं, प्रथम अध्याय वसन्ततिलिकामें है। केवल

दो काव्य पुष्पिताग्रामें हैं, विशेष अध्याय व श्लोक उपजातिमें हैं और जिसमें करोब करीब प्रचलित सभी छंदके काव्य हैं। इसके उपरसे कवि वर्धमान और पं. धरणीने वरांगचरित बनाये मिलते हैं।

वरांगचरित्रका मंगलाचरण इस प्रकार है—

अहंस्त्रिलोकमहितो हितकृत् प्रजानाम्,

धर्मोऽर्हतो भगवत्स्त्रिजगच्छरण्यः ।

ज्ञानं च यस्य सचराचरभावदर्शि,

रत्नत्रयं तदहमप्रतिमं नमामि ॥ १ ॥

—प्रथमाध्याय, श्लो. ७०के अंतमें—

इति धर्मकथोद्देशे चतुर्वर्गसमन्विते, स्फुटशब्दार्थसंदर्भे वरांगचरिताश्रिते  
जनपद-नगर-नृपति-पत्नी-वर्णनो नाम प्रथमः सर्गः ॥

इस वरांगचरित्रको देखकर शोलापुरके पं. जिनदासने एक प्रश्न उठाया है कि—

“जटिल कवि श्वेताम्बर थे या दिगम्बर ? वरांगचरितमें हम देखते हैं कि वरदत्त गणधर एक पत्थरके पाटिये पर बैठकर धर्मोपदेश करते हैं, यह दिगम्बर सिद्धांतके विरुद्ध है। उनके मतानुसार केवली समवशरण या गन्धकुटीमें विराजमान रहते हैं। आगे स्वर्ग भी वारह ही बतलाये हैं, जबकि दिगम्बर सम्प्रदायमें सोलह स्वर्ग माने गये हैं।

—जैनदर्शन, व. ४, अं. ६, पृ. २४६ की फूटनोट।

इसके अलावा वरांगचरित्र, अ. १ में १५वा श्लोक है कि—

मृत्-चालिनी-महिष-हंस-शुक-स्वभावा

माजारि-कङ्क-मशका-ऽज-जलूक-साम्याः ॥

सच्छिद्रकुम्भ-पशु-सर्प-शिलोपमाना

स्ते श्रावका भुवि चतुर्दशधा भवन्ति ॥ १५ ॥

नन्दीसूत्रमें श्रोताओं (श्रावकों) के लक्षण स्पष्ट करनेके लिये “सेलघण” इत्यादि दृष्टांत दिये हैं। प्रस्तुत श्लोक ठीक उसीका ही संस्कृत अनुवाद है। इससे भी आ. जटिल श्वेताम्बर सिद्ध होते हैं। आ. जिनसेनने इस श्लोकके कथनको उठाकर आदिनाथपुराणके श्लो. नं. १३९ में संगृहीत कर लिया है, और मंत्री चामुण्डरायने तो चामुण्डपुराणमें इसको ज्योंका त्यों ही उठा लिया है, जिसमें “चालनी” के स्थान सीर्फ “सारणि” (झाड़ू) पेसा पाठान्तर लिखा गया है।

प्रो. आ. ने. उपाध्ये M. A. विस्तृत विचारणा करके साफ साफ बताते हैं कि—

“ज्ञात होता है कि—आठवीं शताब्दीके चतुर्थ भागके प्रारंभमें दक्षिण और उत्तर भारतमें श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थकारोंके मध्यमें वरांगचरितकी यथेष्ट ख्याति थी। इस दिगन्त व्यापिनी ख्यातिके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जटिल कवि अधिकसे अधिक सातवीं शताब्दीमें अवश्य हुये हैं + + + वरांगचरितकी कुछ रचनाएं समन्तभद्र ( लगभग दूसरी शताब्दी ) और पूज्यपाद ( इ. स. ५०० के लगभग ) की रचनाओंसे साम्य रखती हैं। जहांतक मैं जानता हूं किसी भी प्राचीन संग्रहमें जटिल या जटाचार्यका नाम मुझे नहीं दीख पड़ा + + + चामुण्डरायने जटासिंह-नन्दीके नामसे वरांगचरितके कर्ताका उल्लेख किया है। + + + पार्श्वभ्युदके रचयिता जिनसेन जैसे गुणी पुरुषके द्वारा जटाचार्यके करित्वछटाकी सराहना किया जाना कोई मामुली बात नहीं है। केवल इतना ही नहीं, किन्तु जिनसेनने अपने ग्रन्थमें वरांगचरितका उपयोग भी किया है—आदिपुराणमें वरांगचरितके कुछ प्रसंगोंको अपने शब्दोंमें लिखा है। यद्यपि आदिपुराणके प्रथम परिच्छेदको अनुष्टुप छन्दमें लिखकर उन्होंने उसका ढांचा बदल दिया है, फिर भी बहुतसे शब्द मिलते जुलते हुए हैं। उदाहरणके लिये—आदिपुराणके प्रथम परिच्छेदके १२२-२४, १२७-३०, १३९, १४३, १४४, नम्बरके श्लोकोंकी क्रमशः वरांगचरितके प्रथम परिच्छेदके ६-७, १०-११, १५, १६ और १४ नम्बरके श्लोकोंके साथ तुलना करनी चाहिये। आदिपुराण के सम्बन्धमें जो बात कही गई है। वही चामुण्डराय पुराणके संबंधमें भी कही जा सकती है + + वरांग- चरित ही संस्कृतका प्रथम जैन काव्य है।

—जैनदर्शन, व. ४, अं. ६, पृ. २४२ से २५२।

अब पाठक समझ गये होंगे कि—महापुराणमें श्वेताम्बर ग्रन्थोंसे सहारा लिया है इतना ही नहीं किन्तु कुछ प्रसंग और साहित्य भी उठा लिया है।

मुझे खुशी है कि इन आचार्योंने श्वेताम्बर साहित्यका ढांचा बदलकर महापुराणका निर्माण किया, साथसाथमें इन्साफके जरिये कतिपय श्वेताम्बर मान्यताओंको भी ज्योंकी त्यों रहने दी है।

( क्रमशः )



# સમ્યક્દર્શન

લેખક આચાર્ય મહારાજ શ્રીમદ્ વિજયપદ્મસૂરિજી  
( ગતાંકથી ચાલુ )

હવે દ્રવ્યચારિત્રવાલો અભવ્ય જીવ ક્યાં સુધીનો અભ્યાસ કરી શકે એ જાણવાય છે. કેટલાએક અભવ્ય જીવો નવમા પૂર્વસુધી માત્ર સૂત્રપાઠ ભણે છે, તેથી જ તેમને શ્રુત સામાયિકવાળા કહ્યા છે. જીઓ, આવશ્યક નિર્ધારિતમાં કહ્યું છે કે—

વિત્થંકરાહપૂઅં દટૂણનેણ વાપિ કજ્જેણ ॥

સુચસામાહ્યલાહો, હોજ્જ અભવ્વસ્સ ગંઠિમ્મિ ॥ ૧ ॥

અધિસ્થાનની નજીકમાં રહેલા અભવ્ય જીવને શ્રી તીર્થંકર વગેરેની પૂજા જોઈને અથવા (પૂર્વોક્ત) ખીજા પણ નિમિત્તે ફરીને શ્રુતસામાયિકનો લાભ (પ્રાપ્તિ) થય. તેઓ પૂર્વધર લખિંધ વિનાના હોવાથી (નવ પૂર્વોના) અથને જાણતા નથી. અને તેથી જ તેમનું શ્રુત તે દ્રવ્ય શ્રુત કહેવાય. [એમ કેટલાએક મિથ્યાદષ્ટિ ભવ્ય જીવો પણ (કે જેઓ અધિસ્થાનની નજીકમાં રહ્યા છે, તેઓ) કંઈક જાણ્યા દશ પૂર્વસુધીનું દ્રવ્ય શ્રુત પામે છે] માટે “મિથ્યાત્વિ ગૃહીત કાંષ્ઠ જાણ્યા દશ પૂર્વો સુધીનું શ્રુત મિથ્યાશ્રુત પણ કહેવાય છે.”

જેમને પૂરેપૂરાં દશ પૂર્વોનું જ્ઞાન હોય, તેમને તો જરૂર સમ્યક્ત્વ હોય છે. ખીજા ઓછા પૂર્વોને ભણેલા જીવોમાં તો કેટલાએક જીવોને સમ્યક્ત્વ હોય અને કેટલાએક જીવોને ન પણ હોય. માટે સિદ્ધાંતમાં ભજના ધ્રુવી છે. આ આપતનો જીઓ સાક્ષિપાઠ—**ચુદસ દસ ય અમિણ્ણે—નિયમા સમ્મં તુ સેસપ મયણા=પૂરેપૂરાં ચક્રે પૂર્વોનું** અને દશ પૂર્વોનું એટલે દશથી માંડીને ચૈદ પૂર્વોનું જ્ઞાન જેને હોય, તે પ્રભાવશાલિ મુનિવરોને નિશ્ચયે કરી સમ્યક્ત્વ હોય એ. ‘માકીના એટલે દશથી ઓછા પૂર્વોના જ્ઞાનવાલા જીવોને ભજના હોય એટલે દર્શન હોય અથવા ન પણ હોય. અધિસ્થાનની નજીકમાં આવેલા કેટલાએક ભવ્ય જીવો પણ રાગાદિ ભાવ શત્રુઓથી જીતાયા છતાં પાછા વળે છે, તેમજ પહેલાંની માફક ઘણી લાંબી સ્થિતિવાલાં કર્મોને પણ આંધે છે. અને કેટલાએક અવસ્થિત (ચઢતા એ નહિ, પડતા પણ નહિ એવા) પરિણામવાલા ભવ્ય જીવો તે જ સ્થળે રહે છે. તેઓ અવસ્થિત પરિણામવાલા હોવાથી કર્મોની સ્થિતિ ઓછી તેમજ વધારે પણ આંધતાં નથી. અને જેઓ મોડામાં મોડા અર્ધ પુદ્ગલ પરાવર્ત જેટલા કાચે પણ પરમ પદ પામવાના છે એવા ચારે ગતિના પર્યાપ્ત સંજ્ઞ પચેન્દ્રિય જીવો ક્રહાડાની અણીદાર ધાર જેવા (આગળ જેઓનું સ્વરૂપ કહેવાશે એવા) અપૂર્વકરણુ નામના નવીન અધ્યવસાયેના સમૂહે કરી અધિનો ભેદ કરે છે. એ પ્રમાણે ૧. અધિસ્થાનથી પાછા વળેલા જીવો, ૨. અધિસ્થાનની પાસે રહેલા જીવો, અને ૩ અધિને ભેદનારા જીવો; એમ ત્રણ પ્રકારના જીવોનું યથાર્થ સ્વરૂપ સમજાવવા માટે શાસ્ત્રકારોએ જરૂરી દૃષ્ટાંત પણ આપ્યું છે. કારણકે બાલ જીવોને દૃષ્ટાંત દીધા વિના ચાલુ ખીના સમજાતી નથી. કહ્યું છે કે—“**ન હિ દુષ્ટાંતં વિના દાષ્ટાંતિ-કસ્ય સિદ્ધિર્નર્તુમર્હતિ**” તે દૃષ્ટાંત ટુકામાં આ પ્રમાણે જાણવું:

૧—અપૂર્વકરણુનું સ્વરૂપ જાણાવતાં આગળ અધિ શબ્દનો અર્થ જાણાવવામાં આવશે.

દૂર રહેલા કોઈ મોટા નગરમાં જવાની ઇચ્છાથી ત્રણ માણસો પોતાના ગામથી સાથે નીકળ્યા. ચાલતાં ચાલતાં તેઓ ચોરોના સ્થાનવાળી ભયંકર અટવીમાં આવી પહોંચ્યા. ત્યાં આવતાં તે ત્રણે જણાએ બે ચોરોને જોયા. તેથી ત્રણમાંનો એક બીકણુ માણસ ભય પામી પાછો ભાગી ગયો. બીજા માણસને ચોરોએ પકડ્યો. અને ત્રીજો માણસ બલવાન હોવાથી ચોરોને હરાવી, અટવીનો પાર પામી ઇષ્ટ નગરે પહોંચી ગયો. આ દૃષ્ટાંતને ચાલુ પ્રસંગમાં આ પ્રમાણે ઘટાવવું જોઈએ:- ત્રણ માણસો જેવા સંસારિ જીવો જાણવા. અટવી જેવો સંસાર જાણવો. અને તેના લાંબા રસ્તાના જેવી કર્મોની ઘણી લાંબી સ્થિતિઓ જાણવી. અટવીમાં જેમ ચોરોને રહેવાનું ભયંકર સ્થાન હતું તેમ અહીં સંસારમાં અધિ-સ્થાન જાણવું. બે ચોરોની જેવા રાગ અને દ્વેષ જાણવા, કે જેઓ આત્માના જ્ઞાનાદિ વાસ્તવિક ધનને ચોરે છે. ચોરોથી ભય પામી પાછા વળેલા માણસની જેવા-અધિદેશમાં આવી, ખર પ પરિણામો જાગવાથી પાછા ફરી ઉત્કૃષ્ટ (મોટી, લાંબી) સ્થિતિના બાંધનારા જીવો સમજવા. ચોરોના પંજમાં આવેલા માણસની જેવા-અધિ ભેદવાના કામમાં રાગાદિથી ત્રાસ પામેલા એવા અધિની પાસે રહેલા અવસ્થિત પરિણામવાલા જીવો જાણવા. આવા પ્રકારના જીવો વિશિષ્ટ પરિણામાદિ સાધનો વિનાના હોવાથી અધિને ભેદી શકતા નથી. તેમજ અવસ્થિત (મધ્યમ) પરિણામવાલા હોવાથી (એટલે કે ચલતા કે પડતા પરિણામવાળા નહીં હોવાથી) પાછા પણ વચ્ચતા નથી. તથા ઇષ્ટ નગરે પહોંચેલા પરાક્રમી માણસના જેવા-અપૂર્વકરણે કરીને રાગદ્વેષનું જેમ ઘટાડી સમ્યક્દર્શનરૂપ ઉત્તમ ગુણને પ્રકટ કરનારા જીવો જાણવા. આ કરણમાં વર્તતા અનેક જીવોની અપેક્ષાએ દરેક સમયે અસંખ્યાતા લોકાકાશના પ્રેદેશરાશિની જેટલાં અધ્યવસાય સ્થાનો પ્રાપ્ત થાય છે. તથા પૂર્વપૂર્વ સમયની અધ્યવસાય વિશુદ્ધિથી આગળ આગળના સમયની અનંતગુણી વિશુદ્ધિ હોય છે. આ બીના યથાર્થ સમજાવા માટે શ્રીકર્મપ્રકૃતિની ટીકામાં બે પુરૂષોની ઘટના જણાવી છે, જે ત્યાંથી જાણી લેવી. આ પ્રથમ કરણમાં વિશિષ્ટ અધ્યવસાયોના અભાવે (તેવા પરિણામો નહિ હોવાથી) સ્થિતિઘાત વગેરે પાંચ વાનાં પ્રવર્તતાં નથી. તેમજ આ કરણમાં વર્તનારા તમામ જીવો દ્વિસ્થાનક રસવાળા અશુભ કર્મોને અને ચાર ઠાણિયા રસવાળા શુભ કર્મોને બાંધે છે. તથા સ્થિતિબંધ પણ પૂર્વ સમયની અપેક્ષાએ પલ્લોપમના અસંખ્યાતમા ભાગે કરી ઓછા ઓછા (સ્થિતિ) બંધ આગળ આગળના સમયમાં કરે છે. એ પ્રમાણે ભવ્ય જીવો પ્રથમ કરણે કરીને અધિસ્થાનની નજીકમાં કેવી રીતે આવે?—આ પ્રશ્નનો ખુલાસો ટુકામાં સમજાવ્યો.

૨-અપૂર્વકરણ<sup>૧</sup>—જે અધ્યવસાયોના પ્રનાપે. પહેલાં નહિ કરેલાં એવા (૧) સ્થિતિ ઘાત, (૨) રસઘાત, (૩) ગુણશ્રેણિ અને (૪) અમિનવ સ્થિતિબંધ; આ ચાર કાર્યો થઈ શકે, તેવા નવા અધ્યવસાયોનું નામ અપૂર્વકરણ કહેવાય. સકલ સંસારિજીવોને, દુષ્કર્મોથી પેદા થયેલા, કંઠેર અને મજબૂત તેમજ લાંબા કાળની ઉગેલ ગુપ્ત (ન દેખાય એવી) વાંસની ગાંઠ જેવા, દુઃખે ફરી ભેદી (દૂર કરી) શકાય એવા અને પહેલાં નહિ ભેદાએલા ચીકણાં રાગદ્વેષના જે અધ્યવસાયો પ્રકટે છે તેનું નામ અધિ કહેવાય.<sup>૨</sup> આ અધિનો

૧. અપૂર્વ=નવા, કરણ=અધ્યવસાયો વર્તે છે જેમાં તે અપૂર્વકરણ કહેવાય.

૨. જીવો સાક્ષિ પાઠ:—ગંઠિત્તિ સુદુઃખેઓ-કક્કલકલ ઘણગૂઢરૂઢગંઠિવ્વ ॥

જીવસ્સ કમ્મજણિઓ—ઘણરાગદોસપરિણામો ॥ ૧ ॥

—વિશેઠ માણ્યે ॥ કર્મઠ ટીકાયાં ચ ॥

(સીંકણાં-પ્રયત્ન-રાગદ્રોષના પરિણામોનો) ભેદ (જેર ઘટાડવું) કરવો એ અપૂર્વકરણું ક્ષત છે. અધિ બેદવાની શરૂઆત કરવાવાળા ભવ્ય જીવો-આ કરણમાં પેસતાંની સાથે જ (પ્રથમ સમયથી માંડીને) ઉપર જણાવેલી સ્થિતિ વગેરે ચાર ક્રિયાઓ કરે છે. તે ચાર ક્રિયાઓનું ટુંકામાં સ્વરૂપ આ પ્રમાણે જણાવું:-

૧. સ્થિતિઘાત-સીધી લાઠીનું રૂપ સત્તામાં રહેલી અંતઃકોડકોડિ સાગરોપમ પ્રમાણુ સ્થિતિ સંબંધિ ઉપરના ભાગમાંથી ઉત્કૃષ્ટથી (વધારેમાં વધારે) સેકેકો સાગરોપમ પ્રમાણુ અને જઘન્યથી (ઓછામાં ઓછા) પલ્લોપમના અસંખ્યાતમા ભાગ પ્રમાણુ સ્થિતિખંડને ઉકેરે છે. એટલે તે ભાગમાં રહેલા અને ઉપર કહેલા પ્રમાણુ સ્થિતિવાલા કર્મદલિકોને (સાંથી=ઉપરના ભાગમાંથી) ઉઠાવે છે. અને તે દલિકોને નીચેની તે પ્રથમ સ્થિતિ કે જેમાં રહેલા દલિકા અનુભવાતા નથી તે (પ્રથમ) સ્થિતિમાં ગોઠવે છે. આવી ક્રિયા અંતમુદ્ધત્ત સુધી ચાલે છે. તે પૂરી થયા બાદ ઉપર કહેલા પહેલાં સ્થિતિખંડની (વ્યવધાન રહિતપણે) પછી રહેલા જઘન્ય (નાના) અથવા ઉત્કૃષ્ટ (મોટા) સ્થિતિખંડને અંતમુદ્ધત્તમાં ઉકેરે છે અને પહેલાંની જેમ દલિકોને ગોઠવે છે એ પ્રમાણુ અપૂર્વકરણુના કાલમાં હજારો સ્થિતિખંડના દલિકોને ઉઠાવીને નીચેની સ્થિતિમાં દાખલ કરે છે. તેમ કરતાં અપૂર્વકરણુના પહેલે સમયે જેટલી સ્થિતિ હતી, તેમાંથી સંખ્યાતચુલ્કીન સ્થિતિ થાય છે, એટલે તેટલા પ્રમાણુ સ્થિતિવાલા (તેટલા ટાઇમમાં ભોગવી શકાય એવા) કર્મ-દલિકોને તે ભાગમાંથી ખાલી કરે છે.

૨. રસઘાત-અશુભ (પાપ) પ્રકૃતિઓના સત્તામાં રહેલા રસાણુઓના અનંતા ભાગો કરી તેમાંના એક ભાગ સિવાય બાકીના તમામ ભાગોનો (રસાણુઓનો) અંતમુદ્ધત્તમાં નાશ કરે છે. તે વાર પછી પહેલાં ત્યાગ કરેલા અનંતમા ભાગના અનંતા વિભાગો કલ્પીને એક ભાગ સિવાયના બાકીના તમામ ભાગના રસાણુઓનો અંતમુદ્ધત્ત જેટલા ટાઇમમાં નાશ કરે. એ પ્રમાણુ એક વિવક્ષિત સ્થિતિઘાત કરતાં જેટલો ટાઇમ લાગે, તેટલા ટાઇમમાં હજારોવાર રસઘાત થાય છે. અને હજારો સ્થિતિઘાતો અપૂર્વકરણુમાં થાય છે.

૩. ગુણુશ્રેણિ—ઉપરની સ્થિતિમાંથી ઉઠાવેલા કર્મ દલિકોને “પૂર્વ પૂર્વ સમયમાં જેટલા ભોગવાય, તેથી અસંખ્યાત ગુણુ વધારે વધારે (કર્મ દલિકો) આગળ આગળ સમયોમાં જેમ ભોગવાય તેમ” ગોઠવવા તેનું નામ ગુણુશ્રેણિ કહેવાય. એટલે અધિભેદ કરનારો ભવ્ય જીવ અસંખ્યેય ગુણુ-વૃદ્ધિએ જેમ ભોગવાય તેમ કર્મ દલિકોને ગોઠવે છે.

૪. અભિનવ સ્થિતિખંધ—આ કરણમાં શરૂઆતથી જ માંડીને દરેક સમયે નવી નવી એટલે પહેલાં નહિ આંધેલી એવી પલ્લોપમના અસંખ્યાતમાં ભાગે કરી એછી એછી સ્થિતિ જે આંધવી, તેનું નામ અભિનવ સ્થિતિખંધ કહેવાય. આ કરણવાળા ભવ્ય જીવો તેના પ્રકારનો અભિનવ સ્થિતિખંધ કરે છે.

કવીનાઇન અને ન્યુ કવીનાઇનના દૃષ્ટાન્તે કરી સ્થિતિ-ઘાતાદિનું સ્વરૂપ બરોબર સમજી શકાય છે. કવીનાઇનનો સ્વાદ કડવો હોય છે. કડવાશ વધારે હોવાથી ખાતાં ટાઇમ વધારે લાગે છે. સાયન્સના પ્રયોગથી જો કડવાશ દૂર કરાય, તો પહેલાં જે શીશીનર કવીનાઇનને

[૧૨૩]

શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ

[વર્ષ ૩

ખાતાં ૪ મહિના જેટલો ટાઇમ લાગતો હતો, તે શીશીભર ક્વીનાઇનને કડવાશ દૂર કરી ન્યુ ક્વીનાઇન બનાવ્યું તેથી દરે એક ક્લાક જેટલો પણ ટાઇમ નહિ લાગે. સમજવાની ખીના એ છે કે પૂર્વે કહ્યા પ્રમાણે રસના પ્રમાણમાં સ્થિતિ હોય છે. જેમ ક્વીનાઇનમાં જેવી કડવાશ તેવી સ્થિતિ (શીશીને ખાલી થવાનો ૪ માસ વગેરે ટાઇમ) હોય છે તેમ કર્મ દલિકેમાં પણ-જેટલા પ્રમાણમાં રસ હોય, તેટલા જ પ્રમાણમાં સ્થિતિ હોય છે. જે રસ ઓછો થાય, તે સ્થિતિ જરૂર ઓછી થાય જ. જેમ કડવાશ ઓછી થઈ તે ન્યુ ક્વીનાઇન ખાતાં શું વધારે વાર લાગે ખરી કે? અર્થાત્ ન જ લાગે.

આ ખીન અપૂર્વ કરણમાં પણ દરેક સમયે અસંખ્યાતા લોકાકાશ પ્રદેશોની જેટલા અધ્યવસાય સ્થાનો (ભેદો) છે. એમ આ કરણમાં સ્થિતિઘાત વગેરે ચારે કાર્યો કરવા પૂર્વક ટ્રિયનો ભેદ કરી ત્રીજા અનિવૃત્તિ કરણમાં દખલ થાય છે (પ્રવેશ કરે છે).

૩. અનિવૃત્તિકરણ—આ કરણમાં વર્તનારા ત્રણે કાલના ભવ્ય જીવોની સરખા સમયમાં પરિણામની નિર્મલતા (વિશુદ્ધિ) અનિવૃત્તિ એટલે ફેરફાર વિનાની એક સરખી હોય છે, એથી આ કરણનું અનિવૃત્તિ એવું નામ કહ્યું છે. સરખા સમયોમાં એટલે ઉપર કહ્યા મુજબ, પરિણામની વિશુદ્ધિ જે કે આગળ આગળના સમયોમાં પૂર્વ પૂર્વ સમયની વિશુદ્ધિના જેવી હોતી નથી કારણ કે, કર્મ પ્રકૃતિમાં કહ્યું છે કે “આગળ આગળના સમયોમાં અનંત ગુણ નિર્મલ અધ્યવસયો (પરિણામો) હોય છે.” તે પણ વિવક્ષિત (કહેવા ધારેલ) કોઈ પણ સમયમાં ત્રણે કાલના જીવોની પરિણામ વિશુદ્ધિ એકસરખી હોય છે. એમ “સરખા સમયોમાં” આ પદનો સ્પષ્ટ અર્થ જણાવવા પૂર્વક અનિવૃત્તિકરણની એક રીતે વ્યાખ્યા બતાવીને, ખીજી વ્યાખ્યા જણાવીએ છીએ કે જે અધ્યવસાયો સમ્યક્ત્વ પમાડ્યા સિવાય પાછા હડે નહિ, એટલે જે અધ્યવસાયોના પ્રાપ્ત થવાથી જરૂર સમ્યક્ત્વ પામી શકાય, તેવા અધ્યવસાયોનું નામ અનિવૃત્તિકરણ કહેવાય છે. ઉપર જણાવ્યા પ્રમાણે ત્રણે કરણોની પ્રાપ્તિ (લાભ) ક્રમસર જ હોય છે. જુઓ સાક્ષિપાઠ:—

જા ગંઠિ તા પઢમં-ગંઠિ સમઙ્ચ્છઓ ભવે વીઞં ॥

અનિવૃત્તિકરણં પુણ-સમ્મત્તપુરક્કલ્હે જીવે ॥ ૧ ॥

અર્થ:—ત્રિથિસ્થાન સુધી પહેલું યથાપ્રવૃત્તિકરણ હોય છે, ત્રિથિને ભેદતાં એવા ભવ્ય જીવોને ખીજું અપૂર્વકરણ હોય છે તથા જેણે સમ્યક્ત્વ ગુણ આગળ કર્યો છે, એટલે જેઓ થોડા વખતનાં જરૂર સમ્યક્ત્વ પામશે એવા જીવોને અનિવૃત્તિકરણ હોય, એમ સમજવું.

(અપૂર્ણ)



# શ્રી હસ્તિનાપુર તીર્થકલ્પ

મૂળકર્તા  
આચાર્ય શ્રી જિનપ્રભસૂરિજી  
અનુવાદક  
મુનિરાજ શ્રી ન્યાયવિજયજી

સિરિસંતિ—કુંથુ—અર—મલ્હિસામિણો ગયડરદ્વિષ નમિડં ।  
પમળામિ હત્થિણાડરતિત્થસ્ય સમાસઓ કલ્પં ॥ ૧ ॥

ભાવાર્થ—ગજપુર નગરમાં રહેલા શ્રી શાન્તિનાથજી, શ્રીકુંથુનાથજી, શ્રીઅરનાથજી અને શ્રીમલ્હિનાથ સ્વામિને નમસ્કાર કરીને શ્રીહસ્તિનાપુર તીર્થનો કલ્પ સંક્ષેપમાં કહું છું.

—શ્રીજિનપ્રભસૂરિજી

શ્રીહસ્તિનાપુરજી તીર્થની વર્તમાન પરિસ્થિતિ સંબંધી મારો ક્રેષ્ણ વાયકો વાંચી ગયા યાદ તેમાં લખ્યા મુજબ શ્રીજિનપ્રભસૂરિ વિરચિત વિવિધ તીર્થકલ્પમાંથી શ્રીહસ્તિનાપુરજી તીર્થકલ્પનો ભાવાનુવાદ રજુ કરું છું.

“શ્રીઆદિતીર્થકર શ્રીઋષભદેવજીના ભરત<sup>૧</sup> અને આહુબલિ નામના બે પુત્રો હતા. ભરતના સહોદર ભાઇ ૯૮ રાજકુમારો હતા. ભગવાને દીક્ષા લીધી ત્યારે ભરતને પોતાના રાજસિંહાસને અનિષેક કર્યો. તેને મુખ્ય રાજગાદી આપી અને આહુબલિને તક્ષશિલાનું<sup>૨</sup> રાજ્ય આપ્યું. આવી જ રીતે બીજા છોકરાઓને પણ તે તે દેશનાં રાજ આપ્યાં, તેમાં અંગકુમારના નામથી અંગદેશ પ્રસિદ્ધ થયો. કુરૂ નામના રાજકુમારના નામથી કુરૂદેશ

૧ ઋષભદેવજી ભગવાનને ગૃહસ્થપણમાં બે સ્ત્રીઓ—સુનંદા અને સુમંગલા નામે હતી. તેમાં ભરત સુમંગલાના પુત્ર હતા અને આહુબલિ સુનંદાના પુત્ર હતા. બે ભાઇ મોટા હોવાથી તેમનાં નામ મુખ્ય આપ્યાં છે.

૨ તક્ષશિલા નગર અંગદેશે આજે વિદ્યમાન છે. પંજાબમાં આવેલા રાવલપિંડથી ઉત્તરે ૨૨ માઇલ દૂર આ સ્થાન છે. અહીં હમણાં ખોદકામ ચાલે છે. પ્રાચીન જૈન સ્તૂપો નીકળ્યા છે. જેમાં સમ્રાટ સંપ્રતિનો સ્તૂપ મુખ્ય છે. તક્ષશિલામાં ઉચ્ચાનાગર પાડો હતો. જેથી ઉચ્ચાનાગરી શાખા નીકળી જેનો ઉલ્લેખ શ્રી. કલ્પસૂત્રમાં સ્થવિરાવલિમાં છે.

શ્રી. ઋષભદેવ ભગવાન હઝરથપણમાં અહીં પત્ન્યાર્યા હતા. આહુબલિ ધીજે દિવસે સમૃદ્ધિપૂર્વક વંદના કરવા જવાના વિચારમાં છે, ત્યાં ધીજે દિવસે પ્રભુજી વિહાર કરી ગય છે. આહુબલિ વંદના કરવા આવે છે. પ્રભુજીને ન જોવાથી ખેદ પામે છે અને મંત્રીના કહેવાથી જે સ્થાને પ્રભુજી ધ્યાનમાં ઉભા હતા ત્યાં પ્રભુજીનાં ચરણો જોઇ યાદગીરી અમર કરવા ત્યાં સ્તૂપ બનાવે છે. ચરણુ સ્થાપે છે. આ અવસર્પિણી કાલમાં મૃતિ પૂજની શરૂઆત શ્રી ઋષભદેવજી ભગવાનનો સ્તૂપ સ્થાપીને શરૂ કરી છે.

ભરત અને આહુબલિ જન્મે ભાઇઓ પણ સાધુ બની કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી મોક્ષ પંચાર્યા છે.

પ્રસિદ્ધ થયું. એવી રીતે વંગ (અંગ), કલિંગ-સૂરસેણ, અવન્તિ આદિ રાજકુમારે ના નામથી તે તે દેશનાં નામો પ્રસિદ્ધિ પામ્યાં. કુરૂરાજનો કુમાર હૃતિથ નામે થયો. તેણે હસ્તિનાપુર નગર વસાવ્યું. તે નગરીની પાસે પવિત્ર જલથી ભરેલી ગંગા<sup>૩</sup> નદી વહે છે.

હસ્તિનાપુરીમાં શ્રી. શાંતિનાથ<sup>૪</sup>, શ્રી, કુથુનાથ<sup>૫</sup> અને શ્રીઅરનાથ<sup>૬</sup> ભગવાન સોલમા સત્તરમા અને અઢારમા ત્રણે તિર્થંકર ભગવાનો અનુક્રમે થયા છે. તેઓ અનુક્રમે પાંચમા, છઠ્ઠા અને સાતમા ચક્રવર્તિઓ હતા. તેઓ ચક્રવર્તિ થયા પછી ભરતના છ ખ ડોની ઋક્ષિ ભોગરી છેવટે તેનો ત્યાગ કરી દીક્ષા ગ્રહણ કરી અને કેવલજ્ઞાન પશુ અહીં જ પામ્યા હતા. અર્થાત્ આ ત્રણે તિર્થંકરોનાં સ્વપ્ન, જન્મ, દીક્ષા અને કેવલ જ્ઞાન આ ચારે કલ્યાણક હસ્તિનાપુરમાં જ થયાં છે.

ત્યાં (હસ્તિનાપુરીમાં) આહુઅલિના નત્તુ<sup>૭</sup> શ્રેયાંસ કુમારને ત્રિભુવનગુરના દર્શનથી

૩ આજે પશુ શ્રી. હસ્તિનાપુરજીની પાસે ગંગા નદી વહે છે. જે આપણા મંદિરથી અડધો માઇલ દૂર છે. તેને યુગગંગા કહે છે. તેમજ મોટી ગંગા નદી પણ આપણા મંદિરથી પાંચ માઇલ દૂર છે. જ્યારે ગંગા નદીમાં પાણી આવે છે ત્યારે બંને નદીઓ એક થઈ જાય છે. અત્યારે પશુ તે નદીઓનાં સ્નાનના મેળા ભરાય છે. તેની પ્રદક્ષિણા થાય છે વૈશાખ શુદ્ધિ ૭નો દિવસ ખાસ ગંગારનાનો છે, તેમજ કા. શુ. ૧૫ નહાણનો દિવસ મનાય છે.

૪ શ્રીશાન્તિનાથ ભગવાનના પિતાનું નામ વિન્ધિસેન રાજા, માતાનું નામ અચ્ચિરાદેવી. કુરૂદેશમાં એકવાર ભયંકર મચ્કીનો ઉપદ્રવ થયેલો. કાઠ રીતે શાન્તિ થતી નહેતી. પ્રભુજી માતાની કુક્ષિમાં આવ્યા પછી તેમની માતાએ અમૃત છાંટ્યું જેથી દેશમાં શાંતિ થઈ. રોગ શમી ગયો. પુત્રનો આવો પ્રભાવ જોઈ માતાપિતાએ પુત્રનું નામ ગુણ્વિનિષ્પન્ન શાન્તિનાથ<sup>૪</sup> રાખ્યું તેમનું આયુષ્ય એક લાખ વષનું હતું. ચાલીશ ધનુષ્ય પ્રમાણ શરીર હતું. શરીરનો વર્ણ સુવર્ણ સમાન હતો અને મૃગનું લાંછન હતું.

૫ શ્રીકુથુનાથ ભગવાનના પિતાનું નામ સૂરરાજા, માતાનું નામ શ્રીરાણી હતું. માતાની કુક્ષિમાં તેમનું સ્વપ્ન થયા પછી સૂરરાજાના શત્રુઓ કુથુઆ જેવા નાના નાના થઈને નાસી ગયા હતા. તેમજ દરેક નાના મોટા જીવોનું રક્ષણ કર્યું હતું માટે પુત્રનું નામ કુથુનાથ<sup>૫</sup> રાખ્યું. પંચાણુ હનર વષનું આયુષ્ય અને પાંત્રોશ ધનુષ્યનું શરીર હતું. શરીરનો સુવર્ણવર્ણ તથા લાંછન છાગ-બોકડાનું હતું.

૬ શ્રીઅરનાથ ભગવાનના પિતાનું નામ સુદર્શન રાજા, માતાનું નામ દેવીરાણી હતું. ભગવાન માતાની કુક્ષિમાં આવ્યા ત્યારે માતાએ સ્વપ્નમાં રત્નમય યુલ તથા આરો દીકો હતો જેથી પુત્રનું નામ અરનાથ<sup>૬</sup> રાખ્યું. ચેરાશી હનર વર્ષનું આયુષ્ય તથા ત્રીશ ધનુષ્યનું શરીર માન હતું. શરીરનો સુવર્ણવર્ણ તથા લાંછન નંદાવતું સ્વતિકતનું હતું.

૭ આ સંબંધમાં કલ્પસૂત્ર સુબોધિકાકાર, મહાવિદ્યાન ઉપાધ્યાયજી મહારાજ શ્રી. વિનયવિજય મહારાજ આચર્યક વૃત્તિના અનુસારે જણાવે છે કે “આહુઅલિનો પુત્ર સૌમપ્રમ અને તેમનો પુત્ર શ્રેયાંસ સુવરાજ હતા. વિશેષ પરિચય હું ગનાંકમાં આપી ગયો છું. આ શ્રેયાંસ કુમારનો પ્રભુ સાથે આઠ જવનો સંબંધ હતો જે આ પ્રમાણે છે:-

અંક ૪ ]

શ્રી હસ્તિનાપુર તીર્થકલ્પ

[૧૨૯]

મતિમરણ જ્ઞાન થયું અને તેથી આહાર વિધિ જાણી; એક વર્ષના વાર્ષિક તપવાળા શ્રી ઋષભદેવજી ભગવાનને અક્ષય તૃતીયાને દિવસે (વેશાખ શુ. ૩ ને દિવસે) પોતાના ઘરમાં ઇન્દ્રિયસહી પ્રથમ પાંચું કરાવ્યું તે વખતે ત્યાં પાંચ દિવ્ય પ્રગટ થયાં. શ્રી. મલ્લિનાથજી ભગવાન પણ અહીં (હસ્તિનાપુરીમાં) સમાસર્યા છે. (અર્થાત્ કેવલજ્ઞાની થયા પછી અહીં પધારી સમસરણમાં ગિરાજ ધર્મોપદેશ આપ્યો છે.)

આ નગરીમાં મહાતપસ્વી શ્રી વિષ્ણુકુમાર મહર્ષિએ પોતાની તપસ્યા શક્તિથી એક લાખ યોજનાના વિસ્તારવાળું પોતાનું શરીર વિકુર્વી ત્રણ પગલાં વડે ત્રણ લોકને આક્રાંત કરી દાખીને નમુચિને શિક્ષા કરી.

૧ પ્રથમ ભવમાં પ્રભુ ઇશાન દેવલોકમાં લક્ષિતાંગ દત્ત ચારે શ્રેયાંસ કુમાર નિર્નામિકા નામે દેવી રૂપે હતા.

૨ ત્રીથી પૂવ વિદેહમાં પુષ્કલાવતી વિજયમાં લોહાર્ગલ નગરમાં ભગવાન વજ્રજંઘ હતા અને શ્રેયાંસ કુમાર શ્રીમતી નામે તેમનો સખી રૂપે હતા.

૩ પછી ઉત્તરકુશમાં ભગવાન યુગલિક હતા અને શ્રેયાંસ કુમાર યુગલિની રૂપે હતા.

૪ પછી સૌમ્યમાં અને મિત્ર દેવરૂપે હતા.

૫ પછી પશ્ચિમ વિદેહમાં ભગવાન વૈદ્યપુત્ર હતા ચારે શ્રેયાંસ કુમાર કૈશવ નામે મિત્ર રૂપે હતા.

૬ પછી અચ્યુત કલ્પમાં અને દેવ હતા.

૭ ભગવાન વજ્રનામ હતા અને શ્રેયાંસકુમાર તેમના સારથી હતા. અને એ સાથેજ દીક્ષા લીધી હતી અને સાં શ્રી વજ્રસેન જિનેશ્વર દેવે તેમને કહેલું કે વજ્રાભ ભરત ક્ષેત્રમાં પ્રથમ તિર્થંકર થશે.

૮ અને સર્વાર્થસિદ્ધમાં દેવ હતા.

ચાર પછીના ભવનો આ પ્રસંગ છે. અને તેમના સાથથી ભગવાનનું પારણું થયું છે, જે હું ગતાંકમાં આપી ગયો છું.

અહીં વિવિધતીર્થકલ્પકાર શ્રેયાંસકુમારને આહુઅલિના નતુ રૂપે વર્ણવે છે, જ્યારે પૂ. શ્રી ઉપાધ્યાયજી મહારાજ શ્રેયાંસકુમારને આહુઅલિના પૌત્ર રૂપે વર્ણવે છે આ ભેદ કેમ પડ્યો હશે એ મારી સમજમાં નથી આવ્યું.

૯ આ ઝોગણીસમા તીર્થંકર ભગવાન છે. તેમના પિતાનું નામ કુંભરાજ, માતાનું નામ પ્રભાવતી રાણી હતું. મિથિલાનગરમાં ચાર કલ્યાણક થયાં છે. પંચાવન હજાર વર્ષનું આયુષ્ય, પચીસ ધનુષ્યનું શરીર, શરીરનો નીલવર્ણ અને કુંભનું લક્ષન હતું. મલ્લિનાથ ભગવાને કુમારી રૂપે દીક્ષા લીધી હતી. સ્ત્રી તર્થંકરી એ એક અછેદ છે મિથિલાનગરી આપણું તીર્થસ્થાન હતું. આજે વિચ્છેદ જેવું છે. ત્યાંની પાદુકાઓ ભાગલપુરમાં શ્વે. જૈન-મંદિરમાં છે. ૨૧મા નામનાય પ્રમુની જન્મભૂમિ પણ મિથિલા છે.

૧૦ શ્રી વિષ્ણુકુમાર મહર્ષિ શ્રી મુનિસુવ્રત સ્વામીજીના સમય દરમ્યાન થયા છે. શ્રી હસ્તિનાપુરીમાં પદ્મોત્તર નામે રાજા હતો; તેને જ્વાલા નામની રાણી હતી. પદ્મોત્તરરાજને વિષ્ણુકુમાર અને મહાપદ્મ નામે એ પુત્રો હતા. આ સમયે અવનિતનગરીમાં શ્રીધર્મ નામે રાજા હતો તેને નમુચિ (તેનું બીજું નામ પણ હતું) નામે મંત્રી હતો. તે મહામિથ્યા

[૧૩૦]

શ્રી જન સત્ય પ્રકાશ

[વપ ૩]

આ નગરીમાં સનતકુમાર<sup>૧૦</sup>ચક્ર, મહાપદ્મચક્રી,<sup>૧૧</sup> સુભૂમચક્રી<sup>૧૨</sup> અને

દૃષ્ટિ હતો તેણે શ્રી મુનિસુવ્રતસ્વામીજીના શિષ્ય શ્રીસુવ્રતાચાર્ય સાથે વાદવિવાદ કર્યો અને તેમાં નમુચિ હાર્યો આથી નમુચ્યને બહુ જ ગુસ્સો ચઢ્યો અને હાથમાં તલવાર લઈ આચાર્ય મહાનગરને મારવા ઉપડ્યો પરંતુ રસ્તામાં જ પગ પકડાઈ ગયા. ખીજે દિવસે રાજાને આ સમાચાર મળ્યા. રાજાએ તેને આવા અકર્મી બદલ દેશ બહાર કાઢી મૂક્યો.

નમુચિ લ્યાંથી નોકળી હસ્તિનાપુરના યુવરાજ મહાપદ્મનો સેવા કરવા લાગ્યો. તેના એક કાર્યથી ખુશ થઈ મહાપદ્મે તેને યથેચ્છ કરવાનું વરદાન આપ્યું. બાદમાં પદ્માસર રાજાએ અને વિષ્ણુકુમારે દીક્ષા લીધી. પદ્માસર રાજા આત્મકલ્યાણ સાધી મોક્ષે પધાર્યા અને શ્રીવિષ્ણુકુમાર તપના અચિન્ત્યપ્રમાથી મહાલભિષંપન્ન થયા.

આ અવસરમાં શ્રીસુવ્રતાચાર્ય વિહાર કરતા કરતા હસ્તિનાપુરીમાં પધાર્યા. નમુચિએ રાજા મહાપદ્મચક્રવર્તિ પાસેથી વરદાન અનુસાર રાજાની માંગણી કરી. નમુચિએ આચાર્યો-દિને નમાવવા યજ્ઞ આરંભ્યો. બધા તેને નમસ્કાર કરવ ગયા. જૈનાચાર્ય ન ગયા. આ છિદ્ર પકડી જૈનાચાર્યને બોલાવ્યા. જૈનાચાર્યે તેને સાધુધર્મ સમજાવ્યો પણ નમુચિ ન માન્યો અને હુકમ કર્યો કે સાત દિવસમાં માફ રાજ છોડી ચલ્યા જાઓ, નહિ તો શિરચ્છેદ કરીશ. આચાર્ય મહાનગરે ઘણું સમજાવ્યા છતાં નમુચિએ પોતાની છદ્દ ન છોડી અને એક લભિષંપન્ન મુનિને મેરૂ પર્વત ઉપર ધ્યાન કરતા મહર્ષિ વિષ્ણુકુમારને બોલાવવા મોકલ્યા. વિષ્ણુકુમાર શ્રમણસંઘ ઉપર આહ્વાન બોલી, બોલાવવા આવેલા મુનિને સાથે લઈ, હસ્તિનાપુર આવ્યા. ગુરૂમહારાજાની આજ્ઞાનુસાર રાજાઓમાં જઈ નમુચિને સમજાવવા માંડ્યો, પરંતુ જ્યાં “વિનાશકાલે વિપરીત શુદ્ધિ” થઈ હોય ત્યાં શું થાય? નમુચિએ કહ્યું: પાંચ દિવસમાં બધા સાધુઓ માફ રાખ્યો છોડી ચલ્યા જાય નહિ તો તેમનો શિરચ્છેદ કરીશ. શ્રી વિષ્ણુકુમારને કહ્યું કે માત્ર આપને રહેવા પુરતી ત્રણ ડગલાં જમીન આપને આપું છું. શ્રી વિષ્ણુકુમારે કહ્યું મહાનુભાવ ચક્રવર્તિના રાજ્યનો વિસ્તર તું જોઈ લે, પછી પાંચ દિવસમાં કેવી રીતે તારા રાજાની સરહદ છોડી શકે? નમુચિએ કહ્યું: હું ખીજું કાંઈ ન જાણું. પાંચ દિવસમાં જે (જૈનાચાર્ય) મારા રાજ્યમાં હશે તેમનો હું શિરચ્છેદ કરીશ. શ્રી વિષ્ણુકુમાર મહર્ષિ નમુચિની દ્રેષભાવના-દુષ્ટવૃત્તિ સમજી ગયા. અન્તે શ્રી વિષ્ણુકુમાર મુનિજીએ વૈક્રીયલભિષંપ્તી એક લાખ યોજનનું શરીર બનાવ્યું, એક પગત્રાથી ભરતક્ષેત્ર માપ્યું; ખીજું પગત્રું પૂર્વાપર સમુદ્ર ઉપર મુક્યું; અને ત્રીજું પગત્રું નમુચિના મસ્તક ઉપર મૂકી સિંહાસનથી નીચે પાડી ધરતીમાં પેસાડી દીધો. નમુચિ મરીને નગ્રકમાં ગયો. દેવ-તાઓએ આવી મધુર સંગીતથી મુનિ મહાત્મનો કેષ શાંત કરાવ્યો. પછી શરીર સંકોચી ગુરૂ પાસે જઈ પ્રાયશ્ચિત લઈ, આલોચના કરી અન્તે જપ, તપ કરી શુદ્ધ સંયમપાલી મોક્ષે પધાર્યા.

આવી રીતે આ નગરીમાં આ પ્રસંગ બન્યો છે. તેમાં શ્રી વિષ્ણુકુમાર મહર્ષિ અને મહાપદ્મ નામના નવમા ચક્રવર્તિ બહીં થયા છે. તેમનો સમય વીતમા તીર્થંકર શ્રી મુનિસુવ્રતસ્વામીજીના સમયનો છે. વિશેષ જાણવા ઇચ્છનાર મહાનુભાવે ત્રિ શ. પુ. ચરિત્ર જોવું.

૧૦ શ્રીપંદરમા તીર્થંકર અને શ્રીસોલમા તીર્થંકરની વચમાં સનતકુમાર નામના ચોથા ચક્રવર્તિ થયા છે. તે પણ આ નગરમાં જ થયા છે.



**પરશુરામ**<sup>૧૩</sup> વગેરે મહાપુરુષો ઉત્પન્ન થયા છે.

તેમજ આ નગરીમાં ચરમ શરીરી પાંચ પાંડવ<sup>૧૪</sup> મહાપુરુષો થયા છે અને દુર્યોધન જેવા અનેક મહામલ્લવાન પુરુષો પણ થયા છે.

સાત કોડ સોનામહોરના અધિપતિ ગંગાદત્ત શેઠ અહીં થયા છે. તથા સૌધર્મેન્દ્રનો જીવ કાર્તિકશેઠ<sup>૧૫</sup> કે જેણે રાજના અલાલ્કારથી પરિત્રાજકને જમાડયો હતો, અને અન્તે

૧૧ મહાપદ્મ શ્રીમુનિસુવ્રતસ્વામિજીના સમયમાં થયેલા નવમા ચક્રવર્તિ છે.

૧૨ સુભૂમચક્રી અક્ષરમા તીર્થંકર અને ઝોગણીસમા તીર્થંકરની વચમાં આઠમા ચક્રવર્તિ થયા છે.

૧૩ પરશુરામ અક્ષરમા અને ઝોગણીસમા તીર્થંકરની વચમાં સુભૂમચક્રવર્તિના સમકાલીન છે. તેઓ હસ્તિનાપુરના તાપસઆશ્રમમાં ઉછર્યા હતા.

ઉપર્યુક્ત બધાં ચરિત્રો બહુ મોટાં છે. જેમને તે મહાપુરુષોનાં ચરિત્રો વાંચવાં હોય તેઓ ત્રિ. શ. પુ. ચ. વાંચે.

૧૪ પાંચે પાંડવો આવીસમા તીર્થંકર શ્રીનેમનાથજી ભગવાનના સમયમાં થયા છે. શ્રીકૃષ્ણ પણ આ સમયમાં થયા છે. પાંચે પાંડવો અને દુર્યોધનાદિ સો ભાઇઓ આ નગરમાં થયા છે. વિશેષ માટે જુઓ ત્રિ. શ. પુ. ચરિત્ર.

૧૫ કાર્તિકશેઠ-શ્રી. કલ્પસૂત્ર સુઓધિકા વૃત્તિમાં નીચે પ્રમાણે તેમનું ચરિત્ર મળે છે:-

“પૃથ્વીભૂષણનગરમાં પ્રજાપાલ નામે રાજા હતો. કાર્તિક નામે શેઠ હતો. તેણે સોવાર શ્રાવકની પ્રતિમા વહી હતી તેથી શતકૃતુ એવી તેની ખ્યાતિ થઈ હતી. એકવાર ગૈરિક નામનો પરિત્રાજક તે નગરમાં આવ્યો. કાર્તિકશેઠ દ્રઢ સમ્યક્ત્વી શ્રાવક હતા. તેમના સિવાય બધા યે એ પરિત્રાજક પાસે ગયા. તેના ભક્ત પણ બન્યા. કાર્તિકશેઠ પરિત્રાજકને વંદના-નમસ્કાર-સત્કાર કરવા ન આવ્યા તેથી પરિત્રાજકને શેઠજી ઉપર ગુસ્સો ચઢ્યો.

એકવાર પરિત્રાજકને રાજાએ ભોજનનું નિમંત્રણ આપ્યું. પરિત્રાજકે કહ્યું યદિ કાર્તિક શેઠ પોતાના હાથે મને જમાડે (પીરસે) તો હું તમારે ત્યાં આવું. રાજાએ તે શર્ત સ્વીકારી. પછી રાજાએ કાર્તિક શેઠને કહ્યું કે તમે મારે ત્યાં આવી પરિત્રાજકને જમાડો. રાજાના આગ્રહથી કાર્તિક શેઠે તે વચન માન્ય રાખ્યું. પછી સમયસર પરિત્રાજક જમવા આવ્યો અને રાજાના આગ્રહથી રાજામિયોગેન કાર્તિકશેઠે પરિત્રાજકને જમાડયો. જમતાં જમતાં પરિત્રાજકે નાક ઉપર આંગળી કરી કહ્યું, જે તારું નાક કપાયું. તું ધૂષ્ટ છે, (અર્થાત્ મને વંદના કરવા ન આવ્યો તો તારે છેવટે અહીં આવવું પડ્યું. અન્તે તારું નાક કપાઈ ગયું.) કાર્તિક શેઠે વિચાર્યું યદિ મેં પહેલેથી જ ચારિત્ર લીધું હોત તો આજે મારી આ સ્થિતિ ન હોત. એમ વિચારી વેરાગ્યથી એક હજાર ને આઠ શેઠ પુત્રો-વશિક પુત્રો સાથે દીક્ષા લીધી અનુક્રમે શ્રીદ્વાદશાંગીનો અભ્યાસ કરી આર વષ પર્વત ચારિત્ર પાલી કાળધર્મ પામી સૌધર્મેન્દ્ર થયા.

એટલે કલ્પસૂત્રમાં પણ તેને શતકૃતુનું વિશેષણ આપાયું છે. આ કથા મેં સંક્ષેપમાં જ આપી છે. આકીનું વૃતાંત કલ્પસૂત્ર સુઓધિકામાંથી વાંચી લેવા ભલામણ છે. અહીં આ કથામાં મહોપાધ્યાયજી મહારાજ પૃથ્વીભૂષણ નગર વર્ણવે છે. જ્યારે કલ્પકાર હસ્તિનાપુરનગર જણાવે છે. આટલો ભેદ છે.

વૈરાગ્ય પામી હજાર વર્ષિક પુત્રોની સાથે ભગવાન મુનિસુવત સ્વામી પાસે દીક્ષા લીધી અને તે કાર્તિક શેઠ પણ આ નગરીમાં જ થયા છે.

આ મહાનગરમાં શ્રી શાંતિનાથ<sup>૧૬</sup> ભગવાન, શ્રી કુન્થુનાથજી, શ્રી અરનાથજી અને શ્રી મલ્લિનાથજી ભગવાનનાં મનોહર ચૈત્યો-જિનમંદિરો છે. તેમજ શ્રી અંબિકાદેવીનું મંદિર છે (અર્થાત્ અંબિકાદેવીના સમયે આ અંબાં મનોહર જિનમંદિરો મોળુઃ હતાં એમ લખે છે.)

એ પ્રમાણે અનેક આશ્ચર્યના સ્થાનભૂત અને હજારો નિધાન-ભંડારના સ્થાનભૂત એવા આ મહાતીર્થમાં જે મનુષ્યો શ્રાવિનશાસનની પ્રભાવના કરે છે; અને વિધિપૂર્વક યાત્રા મહોત્સવ કરે છે તે અલ્પ ભવોમાં કર્મકલેશનો વિનાશ કરીને સિદ્ધિપદને પ્રાપ્ત કરે છે.

**શ્રીગજાહ્યતીર્થસ્ય, કલ્પઃ સ્વલ્પતરોઽપ્યયમ્ ।**

**સતાં સંકલ્પસંપૂર્તો, ધત્તાં કલ્પદ્રુકલ્પતામ્ ॥**

અર્થ શ્રીગજપુર તીર્થનો નાનો એવો આ કલ્પ સત્પુરુષોના સંકલ્પની પૂર્તિમાં કલ્પ-વૃક્ષ બનો.

**વર્તમાન પરિસ્થિતિ:**

હું હરિતનાપુર તીર્થની વર્તમાન પરિસ્થિતિ વણવી ગયો છું તેમાં થોડું સ્તૂપનું વિવેચન ઉમેરી આ લેખ સમાપ્ત કરીશ.

વિવિધ તીર્થકલ્પકાર પંદરમી શતાબ્દિમાં થયા છે, તેમણે અહીં ચાર તીર્થકરોનાં સુંદર ચૈત્ય હોવાનું અને એક અંબિકાદેવીનું મંદિર હોવાનું જણાવ્યું છે. ત્યારપછી ૧૬૨૭ માં ખરતર ગચ્છના સુપ્રસિદ્ધ આચાર્ય શ્રીજિનચંદ્રસૂરિ અહીં ચાર તીર્થકરોના સ્તૂપનું વર્ણન કરે છે. (જૂઓ ટીપ્પણ ૧૬ સુ.)

આ ચારે સ્તૂપો અને એક શ્રી આદિનાથ ભગવાનના પારણાનો સ્તૂપ અસારે વિદ્યમાન છે પરંતુ છેલ્લા સો ડોહસો વર્ષમાં આ પ્રદેશમાં શ્વે. સાધુઓના વિહારના અભાવે અને

૧૬ અંબિકાદેવીના સમયે છે કે અહીં શ્રી શાંતિનાથજી, શ્રી કુન્થુનાથજી, શ્રી અરનાથજી અને શ્રીમલ્લિનાથજીનાં મનોહર ચૈત્યો છે. તેમજ અંબિકાદેવીનું મંદિર છે. આનો અર્થ એ છે કે પંદરમી શતાબ્દિના પૂર્વાર્ધ સુધી અહીં આ તીર્થકર દેવોના સ્મારકરૂપ, પ્રાચીન મનોહર જિનચૈત્યો છે. જ્યારે સોત્રમી સદીના પૂર્વાર્ધમાં અહીં આવેલ ખરતરગચ્છના સુપ્રસિદ્ધ યુગપ્રધાન શ્રી જિનચંદ્રસૂરિજીના સમયમાં અહીં શાંતિ, કુન્થુ, અર અને મલ્લિનાથજીના સ્તૂપ હોવાનો ઉલ્લેખ મળે છે. તેમના વિહાર પત્રમાં લખ્યું છે કે “સં. ૧૬૨૭ મહિમ-શાં. કુ. અ. મ. થૂમ્. ચન્દ્ર. મૂ. સ્થુ. નેમિચૈત્યવિચિસૌરીપુરયાત્રા ચન્દ્રવાડિ, હથિણાઝરિ પછઠ્ઠ આગ્યા.” આ ઉપરથી શ્રીયુગ અગરચંદ્ર નાહટા લખે છે કે “इससे हस्तिनापुरमें शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, और मल्लिनाथजिके स्तूपोंकी और चंद्रवाडमें श्री चंद्र प्रभु भगवानकी यात्रा करना निश्चित है.” (યુગપ્રધાન શ્રી જિનચંદ્રસૂરિ, પૃ ૫૩)

આ ઉપરથી એક વસ્તુ નિર્ણીત થાય છે કે ૧૬૨૭માં પણ અહીં ચાર તીર્થકરોના સ્તૂપ હતા.

સ્થનકમાર્ગી સાધુઓ અને દિગંબર પંડિતોના પ્રચારને અંગે શ્વેતાંબરોની સંખ્યા ઘટવા માંડી. યાત્રુ આ નિકટ પ્રદેશમાં ઝોઝા આવવા લાગ્યા. આ તકનો લાભ લઈ દિગંબર જૈનોએ પ્રાચીન સ્તૂપોને તોડી ફોડી નજીકમાં નવા સ્તૂપો બનાવ્યા અને તે નવાં સ્થાનોમાં દિગંબર આચાર્યોના શિલાલેખો લગાવ્યા. પ્રાચીન સ્તૂપો આજે પણ ટુટ્યા ટુટ્યા ઉભા જ છે. તેની પાદુકાઓ રહેવા નથી દીધી; શિલાલેખો પણ નથી રહેવા દીધા.

શ્રીશાંતિનાથજી, શ્રીકુંથુનાથજી અને શ્રીઅરનાથજીના સ્તૂપ બહુ દૂર નથી, પરંતુ શ્રી મહિનાથજી ભગવાનનો સ્તૂપ ઘણો જ દૂર છે. યાત્રુ કોષ્ટક જ ત્યાં જાય છે.

હાલમાં દિગંબરોનું મંદિર અને ધર્મશાલા જે વિદ્યમાન છે તે અર્વાચીન છે. અને શ્વેતાંબર મંદિર અને ધર્મશાલા ઇલાદિ પણ અર્વાચીન છે. શ્વે. મંદિરમાં શ્રી મૂલનાથકજી ભગવાન તો શ્રીશાંતિનાથજી ઉપાધ્યાય પ્રતિષ્ઠિત છે. શ્રી ઋષેભદેવજી ભગવાનના સ્તૂપનું સ્થાન પ્રાચીન છે. ત્યાં શ્રીશાંતિનાથજી, શ્રીકુંથુનાથજી અને શ્રીઅરનાથજીની પાદુકાઓ-સ્તૂપ પણ બનાવ્યા છે. તેમજ પ્રાચીન સ્તૂપના સ્થભો આદિ પણ છે.

દિગંબરોના તાબાવાળી જમીન ખોદતાં એક જિન મૂર્તિનું વિશાલ મસ્તક નીકળ્યું હતું. જેને કુંડલ અને સુગુટ અલેખેલાં હતાં, આ મસ્તક શ્વેતાંબરી છે એમ સમજી દિગંબરોએ તેને ગંગાના જલમાં દૂર જઈ ડુબાવી દીધું. બ્યારે એક દિગંબર મૂર્તિ શ્વેતાંબર જૈનોને મળી તો ઉદ્ધારનાથી એ મૂર્તિ દિગંબરોને સોંપી. બસ શ્વેતાંબરોની આ ઉદ્ધારતા અને મહાનુભાવતા ખરે જ પ્રશંસનીય છે, બ્યારે દિગંબર મહાનુભાવોની આ સંકુચિતતા-અનુદારતા અનુચિત છે. આ વિષયમાં રાયબહાદુર દયારામ સહાનીએ અને અમે તપાસ કરી હતી. અન્ને રાય બહાદુર દયારામ સહાનીએ મૂર્તિનું મસ્તક ગંગામાં ડુબાવી દીધા બદલ ત્યાંના દિગંબર કાર્યવાહકોને સખ્ત શબ્દોમાં ઠપકો આપ્યો હતો. પણ એક અમૂલ્ય વસ્તુ ગમ્ એ ચોક્કસ છે.

અલારે અહીં મોટા મોટા ડીંચા ટેકરા ઘણાં ઉભા છે. તેનું ખોદકામ થાય તો જૈન ધર્મના પ્રાચીન ઇતિહાસનાં કેટલાંએ અણુ ઉખળ્યાં સુવર્ણ પાનાં ઉખેળાય તેમ છે.

અલારે અહીં આપણું શ્વેતાંબરી સુંદર જિનમંદિર, સુંદર ધર્મશાળા અને શ્રી આદિનાથજી આદિના સુંદર પ્રાચીન સ્તૂપ છે. ખાસ તીર્થયાત્રા કરવા લાયક છે. ગૃહસ્થો તો દિલ્હીથી અંબાલા જતી લાઈનમાં મેરઠ સિટી સ્ટેશને ઉતરે ત્યાંથી ખેર દરવાજેથી મવાનાની મોટરો મળે છે. વધારે સ્વારી હોય તો હેડ હસ્તિનાપુરજી સુધી મોટરો જાય છે. નહિ તો મવાના ઉતરી ટાંગો-ગાડુ આદિ કરી હસ્તિનાપુરજી જવાય છે. મવાનાથી છથી સાત માઈલ દૂર અગ્નિ ખૂણામાં આ સ્થાન છે. દરેક યાત્રી આ તીર્થની યાત્રા જરૂર કરે. કા. શુ. ૧૫ નો મોટો-મેજો ભરાય છે. કા. શુ. ૧૪ અને અક્ષય તૃતીયાએ પણ યાત્રીઓ આવે છે. પંચમ શ્રી આત્માનંદ જૈન મહાસભા દ્વારા હસ્તિનાપુર તીર્થ રક્ષક કમિટી તેની વ્યવસ્થા કરે છે, જે પ્રશંસનીય છે.



# खरतर गच्छीय दो आचार्यों के रासोंका

## ऐतिहासिक सार

लेखक:—श्रीयुत अगरचंदजी भंवरलालजी नाहटा

प्रस्तुत लेखमें प्र. श्रीजिनचन्द्रसूरिजीके पट्टधर श्रीजिनसिंहसूरिजी एवं उनके पट्टधर श्रीजिनराजसूरिजीके दो ऐतिहासिक रासों का सार दिया जाता है। श्रीजिनसिंहसूरिजीका परिचय हमने यथाप्राप्त साधनोंसे युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि ग्रन्थके पृ० १७४से १८१में दिया था। प्रस्तुत रास हाल ही में हमें उपलब्ध हुआ है। एवं श्रीजिनराजसूरिजीका ऐतिहासिक रास “मुनि श्रीसारकृत”<sup>\*</sup> हमने अपने संपादित “ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह”के पृ० १५० से १७७ में प्रकाशित किया है। और उसका ऐतिहासिक सार भी उक्त ग्रन्थके सारविभागमें पृ० २२ से २६ में दिया है। पर इसके बाद कतिपय विशेष ऐतिहासिक वर्णनवाला ये जयकीर्तिकृत रास + हाल ही में उपलब्ध हुआ है। ये दोनों रास दोनों आचार्यों की विद्यमानतामें ही रचे हुए हैं, अत एव इन आचार्यों का पूरा जीवनचरित्र इसमें नहीं आया, अतः इन दोनों आचार्योंके जीवननी अवशिष्ट मुख्य मुख्य बातें नीचे लिखी जाती हैं।

**श्रीजिनसिंहसूरि:**—जन्म सं. १६१५ मा. सु. ५ (१५)। दीक्षा सं. १६२३ बोकानेरमें, दीक्षा महोत्सव भांडाणी नींबड़ने किया। वाचक पद सं. १६४० मा. सु. ५ जेसलमेरमें, महोत्सवसे कुशलाने किया। भट्टारक पद सं. १६७० मा. सु. १० विलाडानगरमें मिला। सं. १६७४ पो. सु. १३को मेडतामें स्वर्गवासी हुए। विशेष परिचय “युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि”में प्रकाशित हो जानेके कारण यहां नहीं लिखा गया।

**श्रीजिनराजसूरि:**—श्रीसारकृत रासमें आपने स्थानांगसूत्र पर विषम पदार्थ प्रकाशिनी वृत्ति बनानेका उल्लेख है। पर यह वृत्ति कहीं उपलब्ध

<sup>\*</sup> इस रासका रचना-काल भी संवत् १६८१ है एवं इसकी प्रति का प्रथम पत्र उपलब्ध नहीं होनेसे आदिकी कई गाथाएं चुटक रह गई हैं। संयोगवश श्रीकीर्तिकृत रासकी प्रतिका प्रथम पत्र भी अनुपलब्ध होनेसे ३५ गाथाएं नहीं पाई गई। इन दोनों रासों की प्रतिएं किसी महाशयको अन्यत्र प्राप्त हों तो कृपया हमें सूचित करें।

+ इस कविके स्वयं लि० पत्र २ से ८ (गा. २५५) की प्रति हमारे संग्रहमें है, पुष्पिका लेख इस प्रकार है:—

कृतश्च पंडितजयकीर्तिगणिना श्रीजेसलमेरनगरे ॥ शुभं भवतु: लेखक-  
पाठकयो: लिखितोयं श्रीजेसलनगरे ॥ श्री स्तात् ॥

नहीं हुई। किसी सज्जनको कहीं प्राप्त हो तो हमें अवश्य सूचित करें। हमारे संग्रहके अन्य प्रबन्धमें कुछ विशेष बातें ये हैं:—

- १ श्रीजिनराजसूरिजीके ६ भाई और थे:—रामू, गेहू,\* भैरव, केशव, कपूर, सातउ.
- २ थाहरूशाहने लौद्वपूर प्रतिष्ठा समय १८००) ६० व्यय किए।
- ३ शत्रुञ्जय पर ७०१ प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा की।
- ४ नषानगरके चातुर्मासमें डोसी माधवादि श्रावकोंने ३६००० जाम-साही व्यय किए।
- ५ आपने ६ मुनियोंको उपाध्याय, ४१ को वाचक और १ साध्वीको पहुत्तणी पद दीया।
- ६ आपके शिष्य प्रशिष्यकी संख्या ४१ थी।
- ७ नैषध काव्य पर ३६००० श्लोक प्रमाण बृहद्भृत्ति बनाई। एवं बहुतसे साधुको अंग, उपांग, कर्मग्रन्थादि पढाए।
- ८ सं. १६८६ मिंगसर बदि ४ रविवार आगरेमें सम्राट् शाहजहांसे मिले, इसका विशेष वृत्तान्त दानसागर भण्डार (वं. नं. ४७ पत्र ८) की पट्टावलीमें इस प्रकार लिखा है:—

“ वलि सं. १६८६ श्री आगरा मांहि पहिली आसबखान नइ मिल्या तिहां आठ ब्रा(ह्म)णां सुं वाद करी, आठेइ ब्राह्मण हायां आसबखान निपट खुशी थया तियार पछी कछउ मंड पातिसाहसुं तुम्हको मिलाउंगा तिवारइ मिंगसर बदि ४ आदित्यवार पातसाह साहजहांने मिल्या त्रिह-नारी बिउमारउ साम्हा भूंकी तेढाया घणउ आदर दियउ अने कितरेक देशे यति रह न सकता ते पण तिवार पछी रहता थया ।”

यह बात समकालीन जिनराजसूरि स्वैप, जो ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह पृ. १०३में छपे है, उनसे एवं श्री जिनराजसूरि अष्टक आदिसे भी भलीभाँति सिद्ध है।

९ सं. १७०० आषाढ शुक्ला ९ पाटणमें स्वर्ग सिधारे।

अन्य कई पाठान्तर राससार के फुटनोटमें दे दिए गए हैं। आपके रचित शालिभद्र चौपाई, स्थानाद्भवृत्ति, नैषधवृत्तिके अतिरिक्त १ गजसु-कुमाळ चौपाई, २ चौवीसी, ३ वीसी, ४ कर्मवतीसी, ५ शीलवतीसी, ६ प्रश्नोत्तररत्नमालाबाला०., ७ गुणस्थानक स्त. और अनेकों गीत, पद, स्तवनादि उपलब्ध हैं।

\* गेहूकी अभ्यर्थनासे सं. १६७८ आश्विन बदि ६ को शालिभद्र रास बनाया।

आपके स्वहस्तलिखित कई पत्र हमारे संग्रहमें विद्यमान हैं। संक्षेपमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि आप एक असाधारण प्रतिभा संपन्न उत्तम कवि, कुशल टीकाकार और समर्थ जैनाचार्य थे। प्रतिष्ठाएं तो आपने जितनी की हैं उतनी आपके पश्चात् शायद ही किसीने की हो। सं. १६८६ में आपके लघु गुरु-भ्राता आचार्य श्री जिनसागरसूरिजी आपसे अलग होगए। रासकार जयकीर्ति भी इसके बाद उनकी आज्ञामें रहने लगे। यदि यह गच्छ-भेद नहीं होता तो श्री जिनराजसूरिजीका प्रभाव और भी विशेष विकसित होता।

प्रस्तुत दोनों रास रचना के पश्चात् श्री जिनसिंहसूरिजी लगभग २० वर्ष और श्री जिनराजसूरिजी भी १९ वर्ष तक जीवित रहे थे। इस अरसे में उन्होंने और भी अनेक शासन प्रभावना और महत्त्वशाली कार्य-कलाप किए होंगे पर इनके पीछेके रचित सम्पूर्ण जीवनीमय कोई रास अद्यावधि उपलब्ध नहीं हुए। अतएव अन्य साधनोंके आधारसे लिखने पर भी शृङ्खलाबद्ध और पूर्ण जीवनचरित्र नहीं लिखा जा सकता।

### श्री जिनसिंहसूरि रास-सार

कवि सर्व प्रथम शान्तिनाथ भगवान, सरस्वती और जिनचंद्रसूरिजी को नमस्कारकर श्री जिनसिंहसूरिजीका रास रचता है।

मारवाड़ के वीटावास नगर में चोपड़ा गोत्रीय चांपासाह नामक श्रेष्ठि निवास करते थे। उनको शीलवती भार्या चांपलदेवीकी कुक्षिसे शुभ स्वप्न सूचित पुत्र जन्मा। मातापिताने उत्सवपूर्वक मानसिंह नामकरण किया। कुमार क्रमशः बढने लगे। एकवार युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरिजी उस नगर में पधारे। सूरिमहाराज का उपदेश श्रवण कर मानसिंहजी को वैराग्य उत्पन्न हुआ, मातापितासे आज्ञा प्राप्त कर सूरि-महाराज के पास पंच महाव्रत धारण किए (दीक्षा नाम महिमराज रखा), सूरिजी के पास आगम, तर्क-न्याय, व्याकरण पढकर विद्वान हुए। सूरिजीने जेसलमेर में उन्हें वाचक पदसे अलङ्कृत किया।

वाचकजी गुजरात देशके पाटण नगर में पधारे, संघ हर्षित हुआ।  
× × × × × अहमदाबाद और खम्भात चातुर्मास करके संघपति सोमजी ने संघ सहित तीर्थाधिराज शत्रुंजयकी यात्रा की।

सम्राट् अकबर समस्त धर्माचार्यों को बुलाकर धर्मश्रवण किया करता, अन्य धर्मी विद्वानोंके उपदेशसे चित्त सन्तुष्ट न हानेसे श्रीजिनचन्द्रसूरिजीका नाम श्रवण कर उन्हें बुलाने के लिए फरमान पत्र भेजे। सूरिजी भी लाभ जान कर लाहौर पधारे। सूरिजीका आगमन सुन स्वागतके लिए सम्राटने सैन्य सहित खान, प्रधान, बजीरोंको सामने भेजा। मंत्रीश्वर कर्मचन्द्रने समारोहसे प्रवेशोत्सव किया। जब सूरिजीने डचोढी में प्रवेश

किया, सम्राट् अकबर सामने आया, धर्मोपदेश श्रवण कर सभामें सूरिजी की महती प्रशंसा की। सम्राट् प्रतिदिन सूरिजीसे धर्मगोष्ठी करते परम दयालु हो गए, सूरिजी के उपदेश से आषाढ मासकी अठाही में समस्त (१२) सूरियोंमें अमारि पालन करने के लिए फरमान जारी कर दिए। सूरिजीके कथनसे खंभातके जलचर जीवोंको न मारनेका भी मोहरदार फरमान कर दिया।

सम्राटने एक बार काश्मीर जानेकी तैयारी की, वहाँ भी धर्म प्रचार हो इस लिए सूरिजीसे आज्ञा प्राप्त कर महिमराजजीको अपने साथ लिया। काश्मीरके विकट पथरीले मार्ग में शीतपरिसह सहते हुए पैदल विहारी वाचकजीका साध्वाचार देखकर अकबर दङ्ग रह गया। वाचकजीके उपदेशसे श्रीनगरमें अमारि पाली गई, धर्मप्रभावसे सम्राट् काश्मीर विजय कर वापिस श्रीनगर आए। सम्राटने बड़े गुरु (श्रीजिनचन्द्रसूरिजी) के समक्ष वाचकजी की प्रशंसा करते हुए उन्हें आचार्यपद देनेकी प्रार्थना की। सम्राटने सूरिजीको युगप्रधान पद दिया और वाचकजी को आचार्यपद देने के लिए महोत्सव की तैयारीयां होने लगी। यह उत्सव मंत्री श्रीकर्मचन्द्रकी ओर से हुआ। कविने मंत्रीश्वरके ये अवदात लिखे हैं—सं. १६३५ के दुष्काल में अनर्गल दान दिया, आवू (सिरोही) की प्रतिमाएं छुडाई, सर्वत्र लाहण कीं। उनके पूर्वज नगराज, वच्छा और कर्मसिंह जैसे महापुरुष हुए, जिस प्रकार कर्मसिंहने तीन लाख रुपये व्यय कर जिनहंससूरिजीका पदस्थापन किया उसी भांति कर्मचन्द्रने गुरुभक्त्यर्थ यह महोत्सव किया। रातीजागा, मुंहमागा दान, शाही वाजिज बजाना और मंडप रचना की। खान, वजीर, उमराव, शाहजादा गुरु को बधाते थे। भाट, भोजक, गंधर्व आदि याचकोंको सर्वथा प्रकार से पुण्यवान श्रावकने दान दे कर संतुष्ट किए। ९ गांव, ९ हाथी, ५०० घोड़े आदि सवा करोड का दान दे कर मंत्रीश्वरने अपने पुत्र भागचंद लक्ष्मीचंद सहित जगत में अपना अमर नाम किया।

टांक वंशके राजपाल श्रीमालने २५१ घोड़े दान किए। सं. १६४९ फाल्गुन शुक्ल २ को युगप्रधानजीने महिमराजजी को सूरिमंत्र दिया, जिनसिंहसूरि नाम रखा गया।

एक बार ब्राह्मणोंने सम्राट्के समक्ष कहा “जैन लोग गंगा और सूर्य को नहीं मानते” ऐसा सुन सब के निरुत्तर रहने से सम्राटने जिनसिंह-सूरिजी को बुलाया। प्रश्न, प्रत्युत्तर होते अकबर को संतोषजनक उत्तर मिला। आचार्यश्रीने कहा “जैनशासन में गंगाजल पवित्र कहा है, स्नात्र, पूजा और अभिषेकादि में तीर्थजल की ही प्रधानता है और सूर्य को भी जैसा मानते हैं प्रसिद्ध है, सूर्यास्त के बाद अन्न, जल तक ग्रहण नहीं (अनुसंधान भाटे शुभो पातुं १३८)

# परमार्हत महाकवि श्री धनपालनुं आदर्श जवन

लेखक:-मुनिराज श्री सुशीलविजयल

(गतांक्षी यालु)

नगरजतोअमे करेलुं लव्य सामभुं

**आ**जने। द्वियम मङ्गलम्य हतो। पसन्त ऋतुतो प्रारंभशत्र यालतो होवाथी धारनगरीनी शोभा अने जन समुगायना दर्पना कल्लोकोनी परिशीभा न हती। स्थणे स्थणे पुंनो, स्त्रीओ अने प्राणको अनेक तरेदना वस्त्रालंकारथी आभूषणोथी सन्गर थयेवां देभातां हुतां। वाजितोना द्विय ध्वनि लूमंडलने गन्तवी रखां हुतां, वरतोनी विजय पताकाओ सम्भम इरकी ःही हती। लोकोना वदनक्रमलमांथी वीरध्वनीओना उद्गाराशे तीकुणी रखा हुता। ओ सुरीश्वरनी धर्मनी नौपत सांभगावा क्रान्ते वेगव्यमय वाणुनि हृदय मलमां हुताःवा भारे, आधिःवाधि उपाधिःपी अेरी सर्पोनुं विष हुताःवाने क्रान्ते, अन्तःक्रःणुमां

(पान १३७नुं यालु)

करते। इस प्रकार जिनसिंहसूरि विजेता हुए और विप्र तिस्कृत हुए।

सम्राट् अकबर, राव, राणा, मंत्रीश्वर, मुंहत आदि जिनसिंहसूरिजी को बहु मान देते थे। दादा जिनदत्तसूरिजी और जिनकुशलसूरिजी जिन्हें सानिध्य करते हैं ऐसे श्रीजिनसिंहसूरिजी अपने वचनसुधारसद्द्वारा भव्योंको प्रतिबोध देते हुए चिरकाल तक जयवन्त रहें।

यह रास चारित्रउदय वाचक के शिष्य वीरकलश के शिष्य सूरचंद्रगणि\* ने रचकर पूर्ण किया।

(अपूर्ण)

\*इनकी अन्य कृतियों की सूचि “युगप्रधान श्रीजिनचंद्रसूरि” पृ० २०४ में देखें। यद्यपि इस रास में रचना समय नहीं दिया है फिर भी इसका रचनाकाल सं. १६५० और १६५६ के मध्य में ही ज्ञात होता है, क्योंकि अकबर-मिलन के पश्चात की कोई भी घटना इस रास में नहीं है और श्रीजिनसिंहसूरि अकबर के दरबार में सं. १६४८, ४९, ५०, ५१ तक ही रहे ज्ञात होते हैं। इस रास में मंत्रीश्वर कर्मचन्द्र के चिरायु होने की आशीर्वाद दी है, और सं. १६५६ में सूरिश्वरका स्वर्गवास अहमदाबाद में हो चुका था, अतः रास रचना इससे पूर्व होना स्वतः सिद्ध है।

इस रास की प्रति (पत्र ४, गा० ६५) हमारे संग्रह में है। पुष्पिका लेख यह है:—संवत् १६६८ वर्षे पुग्गलकोटे युगप्रधान गुरु श्री जिनचंद्रसूरि-शिष्यवाचनाचार्यकल्याणकमलगणि शिष्य पं. महिमसिन्धुरगणि तत् शि० विनयवर्द्धनमुनिना लेखि श्राविका चांपा पठनार्थम् ॥ वाच्यमानं चिरं नद्यात् ॥



રહેલા સંશયોને દૂર કરવાને કાળે, ધર્મરસિક આત્માઓ; શ્રમણોપાસકો તમા અન્ય પ્રજા-જનોનાં ટોળેટોળાં પોતાનાં શિર ઝુકાવી રહ્યાં હતાં. આ પ્રમાણે સૂરીશ્વરને મોટા આડંબર પૂર્વક, ભવ્ય સામર્થ્યા સહિત ધારાનગરીમાં પ્રવેશ કરાવ્યો.

### સર્વ દેવનું ઉપાશ્રયમાં આગમન

સૂરીશ્વરની શાંત મુદ્રા, ભવ્યતા અને મૃદુતા ભરેલાં ચક્રુઓ દેખીને પ્રત્યેક મનુષ્યનું શરીર પ્રણિપાત કરવાને તૈયાર થતું હતું. અન્તઃકરણ તેમની ભક્તિ-સેવા કરવા લલચાતું અને આત્મા તેમની સુધાર્વાર્ષિણી વાણીનું પાન કરીને આતુર થતો હતો. ધારાનગરીના વૃદ્ધો, યુવાનો સ્ત્રીઓ, આળસ; સૌ કેમ એમનાં દર્શન કરવાને માટે તલસી રહ્યાં હતાં.

દિન પ્રતિદિન વૃદ્ધિ પામતી હનરો માયુસોની મેદનીને પોતાની સુધાર્વાર્ષિણી વાણીથી તૃપ્ત કરતા હતા અને લોભના બધા સંશયોને દૂર કરતા હતા. આ વાત એક વખત સર્વદેવ વિપ્રના સાંભળવામાં આવી એટલે તે દિન પ્રતિદિન ઉપાશ્રયમાં આવવા લાગ્યો. મનો-રંજક મધુરી વાણીને સાંભળતાં જ અત્યન્ત પ્રસન્ન થયો. અને તેના હૃદયકલમાં રહેલા સંશયો દૂર થવા લાગ્યા. જેમ જેમ પોતાના મતિકલ્પનાના સંશયો અન્તઃકરણમાંથી દૂર થવા લાગ્યા તેમ તેમ તેને આચાર્ય મહારાજ ઉપર શ્રદ્ધા થવા લાગી.

### એકાન્તમાં પૂછેલો પ્રશ્ન અને તેનો અપાયેલો જવાબ

એક સમયે સર્વદેવે સૂરીશ્વરજીને એકાન્તમાં પૂછ્યું કે—મહારાજ ! મારા પૂર્વજો ધણા સમર્થ વિદ્વાન હતા, તેમણે કાણું જ દ્રવ્ય ઉપાર્જન કર્યું હતું. તે ધન ધરના આંગણમાં દાટેલું છે. તેની મેં ધણી જ તપાસ કરી છતાં પણ તેનો પતો લાગતો નથી. તો આપ જ્ઞાનનિધાન છો—સર્વજ્ઞ પુત્ર છો. આપનાથી કોઈ પણ વસ્તુ અજ્ઞાણી નથી. તો હું પ્રભુ, મારાપર અનુચલ લાવીને તે નિધાન મને ખતાવો કે જેથી કુટુંબ સહિત હું પોતાના સ્વજનો સહિત દાન-ભોગથી વિલાસ કરી શકું.<sup>૧</sup> હું આપનો જીવનપર્યન્ત ઉપકર ભૂલીશ નહીં.

ત્યારે સૂરિજીએ રિમતવદને જણાવ્યું કે—હે મહાતુભાવ ! જો તે દ્રવ્ય તને પ્રાપ્ત થાય તો તું અમને તેના બદલામાં શું આપે ?

સર્વદેવે કહ્યું—હે સ્વામીન, તે ધન જો પ્રાપ્ત થાય તો હું આપને તેમાંથી અર્ધો-અર્ધ ભાગ અવશ્ય આપીશ.

ત્યારે આચાર્ય મહારાજે પોતાના શ્રુતજ્ઞાનના બળથી, ભવિષ્યમાં શાસનની ઉત્પત્તિ કરનાર એવા શિષ્યનો લાભ થવાનો છે, તેમજ જૈનશાસનની મહાન ઉત્પત્તિ થવાની છે; એવું જાણીને તે સ્થાન ખતાવ્યું. સર્વદેવ હર્ષ કલ્લોલોથી વ્યખ્ત થતો, આનન્દિત થતો ખતાવેલા સ્થાને ખોદવાને માટે ધરે આવ્યો. સૂરિજીએ જે સ્થાન ખતાવ્યું હતું તે સ્થાન ખોદાવતાં સર્વદેવને નિધાન મળી આવ્યું. તેમાંથી ચાળીશ લાખ ( ૧૦૦૦૦૦૦ ) ટંક<sup>૨</sup> સુવર્ણ

<sup>૧</sup>બ્રાહ્મણ: સકુટુંબસ્તત્સ્વજનૈ: સહ લેલતિ ॥

દાનમ્ભોગૈસ્તત: શ્રીમત્પ્રસીદ પ્રેક્ષયસ્વ તન્ ॥ ૨૧ ॥—યુગ્મમ્—પ્ર. મ. પ્ર.

<sup>૨</sup>ચત્વારિંશત્ સુવર્ણસ્ય ટંકલક્ષા વિનિર્યયુ: ॥—પ્ર. મ. પ્ર.

લેખક જગજીવન માલજી—ચુડા ( કાઠિયાવાડ ) “ યુજરાતનું ગૌરવ ” એ નામના

નિકળ્યું. આ જોતાં જોનાં રોમરાય વિકસ્વર થયેલા છે એવો હર્ષિત થયેલો તે જ્યાં આચાર્ય મહારાજ બિરાજમાન હતા ત્યાં આવીને કહેવા લાગ્યો કે—હે સ્વામીન, આપના ખતાવ્યા પ્રમાણે નિધાન પ્રાપ્ત થયું છે. આપ આનો અર્ધ ભાગ સ્વીકારી લ્યો.

સૂરીશ્વરે કહ્યું કે અમે તો જ્યારથી ભાગવતી દીક્ષાને અંગીકાર કરી ચારથી જ કંચન અને કામિનીનો સર્વથા (જનવજીવ સુધી) લાગ કરેલો છે. માટે અમારે એની સ્પૃહા પણ નથી.

ત્યારે સર્વદેવે જણાવ્યું કે—હે પ્રભો, પૃથ્વી રસાતાલમાં પેરી જન્ય, સુવર્ણમય મેડ પર્વત ચલાયમાન થાય, સૂર્ય ભલે પશ્ચિમમાં ડોગે, રત્નાકર (સસુદ્ર) પોતાની મર્યાદાને છોડી દે, આકાશખતાલ એક થઈ જન્ય, શરીરના ટુકડેટુકડા થઈ જન્ય, સ્વર્ગ ભુવનમાંથી ઇન્દ્રમહારાજ ખુદ આવે તો પણ હું મારી પ્રતિજ્ઞાનો પ્રાણીતે પણ ભંગ કરવાનો નથી.

પ્રથમ આપ આનો અર્ધ ભાગ સ્વીકારી લ્યો, પછી આપની ઇચ્છાનુસાર વ્યવસ્થા કરજો. આ પ્રમણે સર્વદેવ અને સૂરીશ્વરજીની વચ્ચે એક વર્ષ સુધી વાદવિવાદ ચાલ્યો.

પ્રાંતે આચાર્ય મહારાજે જણાવ્યું કે—હે ભદ્ર ! અમારે દ્રવ્યની આવશ્યકતા જ નથી, તો પછી લેવાની કે તેને સ્પર્શ કરવાની વાત જ ક્યાંથી હોય ? તેમ છતાં ય પ્રતિજ્ઞાને પ્રતિબંધ નહતો હોય તો તમારા ગૃહમાંથી સાર વસ્તુમાંથી અર્ધભાગ આપો.

સર્વદેવે કહ્યું કે હું જગતવંધ ! મારા ગૃહમાં દ્રવ્ય કરતાં અન્ય સાર વસ્તુમાં શી છે, કે જે હું આપને અર્પણ કરી શકું, અને મારી પ્રતિજ્ઞામાંથી મુક્ત થઈ શકું.

સરિજીએ જણાવ્યું કે—હે મહાનુભવ તમારા ગૃહમંદિરમાં સાર રૂપ એ પુત્ર છે, તેમાંથી એક પુત્ર અમને આપો, એટલે તમારી પ્રતિજ્ઞા પરિપૂર્ણ થાય. આ સાંભળતાં જ મોહના વશને લક્ષ્મીને હૃદયની અંદર અત્યંત અધાત દયે. અશ્વ કુંભમાંથી ધર ધર અશ્વ-એની ધારાઓ છુટવા લાગી, જાણે એકમાં શ્રાવણ અને એકમાં ભાદરવો વરસવા લાગ્યો. શરીર મુચ્છા વશ થઈ ગયું. હાડ કંપવા લાગ્યું. કિન્તુ પોતાની દૃઢ પ્રતિજ્ઞાને લક્ષ્મીને છેવટે મહાકષ્ટ સહિત પુત્ર આપવાનો પણ સ્વીકાર કર્યો.<sup>૨</sup>

આચાર્ય મહારાજ પણ અન્યત્ર સ્થાને વિહાર કરી ગયા.

(અપૂર્ણ)

પુસ્તકમાં જણાવે છે કે—ટંક એ વખતનું સુખ્ય ચલણી નાણું હતું. હજી પણ આપણે “ટકાનું વ્યાજ” “પુરી એક અધેરી અને ગંડુ રાજા ટકે શેર ભાજી ટકે શેર ખાખા” વગેરે વગેરે શબ્દોમાં “ટકો” શબ્દ વાપરીએ છીએ, તે, તે કાળના “ટકો” શબ્દ પરથી ચાલતો આવે છે. કિન્તુ હાલના ચલણી નાણામાં શું કિંમત ગણાય છે, તે સમજાતું નથી.

“ન આણસો મનમાં આશંક, તમ આગ્યે પામ્યા લાખ ટંક”—કવિ પ્રેમાનંદ.

<sup>૧</sup>શ્રીમતઃ સર્વદેવસ્ય મહેન્દ્રસ્ય, પ્રભોસ્તથા ।

દાનગ્રહણયોર્વાદો વર્ષં યાવત્ તદાઽભવત્ ॥ ૨૧ ॥—પ્ર. મ. પ્ર.

<sup>૨</sup>ઈતિ કર્તવ્યતામૃદો દ્વિજઃ કષ્ટેન સોઽવદત્ ।

પ્રદાસ્યામિ તતો વેશ્ય, નિજં ચિંતાતુરો યયૌ ॥ ૩૩ ॥—પ્ર. મ. પ્ર.

# શ્રી દશવૈકાલિક સૂત્રની

## ઉત્પત્તિ-કથા

લેખક:—મુનિરાજ શ્રી દક્ષવિજયજી.

**શ્રી** દશવૈકાલિક સૂત્રના કર્તા શ્રી શય્યાંભવસૂરીશ્વરજી મહારાજ છે કે જેઓ શ્રીમહાવીરદેવની પદ્મપરંપરાએ ચોથા આવે છે. તેઓ ચૌદપૂર્વી હતા. શ્રમણુ ભગવાન મહાવીર પરમાત્મા પછી (ઐતહાસિક દૃષ્ટિએ) ૭૫ કે ૮૦ વર્ષ વીત્યા બાદ આ ગ્રંથ રચાયો હોય એમ સંભવે છે.

“ સ્વેજ્જંભવં ગણધરં જિણપદ્મિમાદંસગેણ પદ્મિબુદ્ધં ।

મણગપિઅરં દસકાલિયસ્ત નિજ્જૂહગં વંદે ” ॥ ૧૬ ॥—દારં

આ દ્વાર ગાથા છે. તેનો અર્થ એ છે કે “ શ્રી દશવૈકાલિકસૂત્રના રચયિતા, મનકના પિતા, અને શ્રી જિનેશ્વરની પ્રતિમાના દર્શનથી પ્રતિબોધ પામેલા એવા શ્રી સ્વયંભવ ગણધરને હું વંદન કરું છું.” આ દ્વારગાથા ઉપરથી શ્રી શય્યાંભવસૂરિજી મહારાજ આ સૂત્રના રચયિતા છે તે સિદ્ધ થાય છે. આ સૂત્રરચના કોને ઉદ્દેશીને થઈ તેનો વિસ્તૃત વૃત્તાંત નીચે પ્રમાણે છે:—

વર્તમાન શાસનાધિપતિ, ચરમ તીર્થંકર શ્રી. મહાવીર પ્રભુના તીર્થના સ્વામી શ્રી સુધર્માસ્વામી ગણધર થયા. તેમની પાટે શ્રી જંબૂસ્વામીજી આવ્યા અને તેમની પાટે શ્રી પ્રભવસ્વામીજી થયા. તેઓશ્રીને એકદા પાછલી રાત્રિએ વિચાર આવ્યો કે ‘મારો ગણધર કોણુ થશે? અર્થાત્ મારો પાછળ આ સાધુ-ગણુ તથા શાસનને સાચવવામાં સમર્થ એવો કોણુ છે?’ ત્યારે શ્રી પ્રભવ સ્વામીજીએ સધુ સમુદાયમાં તેમજ આખા સંઘમાં ઉપયોગ મૂક્યો (દૃષ્ટિ ફેંકી) પણ એવો કોઈ સમર્થ વ્યક્તિ દૃષ્ટિપથમાં ન આવી તેથી જૈનેતર ગૃહસ્થોમાં ઉપયોગ મૂક્યો. તેમાં તેઓશ્રીએ રાજગૃહનગરમાં શય્યાંભવ નામના બ્રાહ્મણને યજ્ઞ કરતો નિહાળ્યો. ત્યારબાદ તેઓશ્રી રાજગૃહનગરમાં પધાર્યા, અને પોતાના બે સુજ્ઞ સાધુઓને યજ્ઞસ્થળમાં ભક્ષાને બહાને મોકલી સ્વયંભવને પ્રતિબોધ પમાડવાના ધરિદાઓ કહ્યું કે— “ યજ્ઞપાટકે બાઓ, ભક્ષાને માટે ધર્મલાભ આપજો. તેઓ કહેશે કે અહીંથી ભક્ષા (ગોચરી) તમને મળશે નહિ ત્યારે તમારે કહેવું કે “ અહો કષ્ટં તત્ત્વં ન જ્ઞાયતે ” અરે! અહીંતો કષ્ટ છે, તત્ત્વ તો કંઈ સમભતું નથી; અર્થાત્ આ યજ્ઞમાં સાચું તત્ત્વ શું છે તે બણ્યા સિવાય ફેગટ કષ્ટ શા માટે સેવો છો!” શ્રીપ્રભવસ્વામીજીની ઉપયુક્ત શિક્ષા તથા અનુમતિ લઈ બન્ને સુજ્ઞ સાધુઓ યજ્ઞપાટકે ગયા અને ગુરૂમહારાજની આજ્ઞાનુ-

સાર કરી પાછા ફર્યા હવે અહીં યજ્ઞપાટકના દ્વારપર રહેલા શય્યલવ ઉપર્યુકત સાધુઓનું વચન સાંભળી વિચારવા લાગ્યા કે આ બેઠે મુનિઓ પ્રશાન્ત તપસ્વી હતા મને ખાત્રી છે કે જૈન મુનિઓ અસત્ય તો ન જ બોલે. આમાં છે શું? ઈત્યાદિ વિચારણાથી યજ્ઞ કરાવનાર અધ્યાપકનો પાસે બંધને શય્યલવે પૂછ્યું કે—“આ યજ્ઞમાં તત્ત્વ શું છે? પેલા બે મુનિઓ “અહો કષ્ટં તત્ત્વ ન જ્ઞાયતે” એ પ્રમાણે કહી ગયા, એનું શું? તેણે કહ્યું કે “વેદો આમાં તત્ત્વભૂત છે.” પણ તે સાબીત કરી શક્યો નહિ ત્યારે સ્વયંલવ બ્રાહ્મણે અતિ કેધાવેશમાં આવોને તસ્વાર ખેંચી અને કહ્યું કે—“સાચું બોલ! આમાં વાર્તાવિક તત્ત્વ શું છે? બખરદાર! ચેંચા કરી તો આ જ સમશેરથી તારૂં મરતક કાપી નાખીશ.” આવાં સાક્ષાત્ કૃતાન્ત સમાં વચન સાંભળી તે અધ્યાપક લયબાન્ત ચિત્તે મનમાં બખડવા લાગ્યા કે આપણું તો આજ આવી બન્યું. વેદમાં કહ્યું છે કે આપત્તિકાળમાં (શિરચ્છેદ અવસ્થામાં) જેવું હોય તેવું કહી દેવું” એમ વિચારી રાંકડા બનેલ યાજ્ઞિક અધ્યાપકે ગદ્ગદ કંઠે કહ્યું કે આ યજ્ઞના થાંભલા નીચે સર્વરત્નમયી અને ધ્રુવ એવી અરિહંત (જન)નો મૂર્તિ છે, આ સઘળો તેને જ પ્રતાપ છે, માટે અરિહંત ભગવાનનો ધર્મ એ જ વાર્તાવિક તત્ત્વ છે” આ પ્રમાણે કહીને, તે શય્યલવના ચરણમાં પડ્યો અને વારંવાર ક્ષમા માગી. આખરે શય્યલવ બ્રાહ્મણે યજ્ઞપાટકનાં ઉપકરણો તેને સોંપી દીધાં. ત્યારબાદ પેલા બે સાધુઓની શોધખોળ કરતા કરતા બંધાં શ્રી. પ્રભવરવામીજી હતા ત્યાં શય્યલવ આવી પહોંચ્યા.

અને આચાર્ય તથા અન્યમુનિમંડળને વાંદીને સવિનય વિજ્ઞાપિ કરી કે “હે પ્રભો! મને ધર્મ સમજાવો.” ત્યારે શ્રીપ્રભવરવામીજીએ ઉપયોગ મૂકી બાણ્યું કે આ સ્વયંલવ છે, ત્યારે આચાર્ય ભગવન્તે સાધુ ધર્મ કહ્યો. શ્રીસ્વયંલવબ્રાહ્મણે સાધુધર્મને યથાર્થ હિતકારી, તેમજ મુક્તિનું અદ્વિતીય કારણ સમજી, પ્રતિબોધ પામી, આ અસારસંસાર છોડી ભાગવતી પ્રવ્રજ્યા અંગીકાર કરી, તેઓ ચૌદ પૂર્વના જ્ઞાતા થયા. બ્યારે તેઓશ્રીએ દીક્ષા લીધી ત્યારે તેમની સ્ત્રી ગર્ભવંતી હતી, જેથી સ્વજનોમાં હો હોકાર મચી ગયો, કે જીવાન અને પુત્ર રહિત સ્ત્રીના પતિએ દીક્ષા લઈ લીધી, અરે હવે એનું શું થશે? સ્વજનોએ પૂછ્યું કે તારા ઉદરમાં કાંઈ પણ છે? ત્યારે તેણીએ જવાબ આપ્યો કે ‘મનાક’ એટલે કાંઈક હોય એવું મને લાગે છે. કલાંતરે તેણીએ એક પુત્રરત્નને જન્મ આપ્યો. સ્વજનોના પ્રત્યુત્તરનાં ‘મનાક’ એ પ્રમાણે તેણીએ કાંધુ હતું માટે પુત્રનું નામ પણ ‘મનક’ પાડ્યું. મનક બ્યારે આઠ વર્ષના થયો ત્યારે માતાને પૂછ્યું કે—“મારા પિતા કોણ છે?” ત્યારે તેણીએ કહ્યું કે “તારા બાપે તો દીક્ષા લીધી છે.” પૂર્વસંસ્કારને લઈને મનકને પોતાના પિતાને મળવાની ઘણી જ ફટકા થઈ. આખરે મનક નાસી પોતાના પૂજ્ય પિતાશ્રીનો પત્તો મેળવી ચંપાપુરીમાં પહોંચ્યો. તે સમયે શ્રીસ્વયંલવ આચાર્ય

મહારાજ સ્થંડીલભૂમિએ બહાર પધાર્યા હતા. ત્યાં તેઓશ્રીને આ બાળક મનક દૃષ્ટિગોચર થયો. બાળકે તેઓશ્રીને વંદન કર્યું. આચાર્ય મહારાજને તે બાળક ઉપર સ્વાભાવિક સ્નેહ નિપળ્યો. બાળકને પણ તેવો જ અસાધારણ પ્રેમ થયો. અને બંનેએ અમુક સમય સુધી તો પરસ્પર અનિમેષ નયને નિહાળ્યું. છેવટે આચાર્યમહારાજે બાળકને પૂછ્યું કે—“અલ્યા છોકરા, તું કયાંથી આવે છે?” બાળકે કહ્યું—“રાજગૃહનગરથી.” આચાર્યે પૂછ્યું—“રાજગૃહનગરમાં તું કોનો પુત્ર અથવા પૌત્ર છે?” બાળકે જવાબ આપ્યો—“શય્યભલવ નામના પ્રાદ્યુષ્ણને હું પુત્ર છું, અને મારા પૂજ્ય પિતાશ્રીએ તો દીક્ષા લઈ લીધી છે.” આચાર્ય ફરી પૂછ્યું “તું અહીં શા કામ માટે આવ્યો છે?” બાળકે ઉત્તર આપ્યો “હું પણ દીક્ષા લઈશ, આપ તેમને યોગ્યો છો?” આચાર્યે ઉત્તર આપતા કહ્યું “હા, યોગ્યીએ છીએ.” બાળકે વધુ જાણસાથી પૂછ્યું તેઓશ્રી કયાં છે?” આચાર્યે બોલ્યા કે “તે (તારા બાપા) તો મારા મિત્ર છે. તથા તે અને હું એક શરીરો છીએ. મઠે હિ વત્સ! તું મારી પાસે દીક્ષા લઈ લે.” બાળકે કહ્યું—“લલે, હું એમ કરવા તૈયાર છું” પછી શય્યભલવ આચાર્ય મહારાજ ઉપાશ્રયે પાછા પધાર્યા, અને સચિત્ત વસ્તુ (બાળક)ની પ્રાપ્તિની આલોચના કરી (પિતાના પુત્ર) બાળકને દીક્ષા આપી, ઉપયોગ સુકી વિચારવા લાગ્યા કે—આ બાળક મનક કેટલો કાળ જીવશે? તેમાં કણાયું કે છ મહિના સુધી. ત્યારે તેઓશ્રીએ વિચાર્યું કે આનું બીજારાનું ઘણું યોદ્ધું આઉં છું. હવે શું કરવું? ઈત્યાદિ વિચારણા દરમિયાન એક એવી બુદ્ધિ સુઝી કે—કારણ પ્રસંગે ચૈદ પૂર્વધર પૂર્વમાંથી ઉદ્ધરોને તદનુસાર નવા સૂત્રની રચના કરી શકે છે, અને અપશ્ચિમદશપૂર્વી તો અવશ્ય ઉદ્ધરી શકે છે. મારે પણ આ સબળ કારણ ઉપસ્થિત થયું છે, માટે હું પણ આ મનક માટે ઉદ્ધર કે જેથી છ માસના અલ્પાયુષ્ય કાળમાં પણ આ બીજારો આત્માનું સાધી જાય. એવી અનુગ્રહ બુદ્ધિથી ‘દશવૈકાલિકસૂત્ર’ રચ્યું. દિવસનો ઘણો ભાગ પસાર થયા પછી વિકાલે આ સૂત્રની રચના કરી તેથી અને આમાં દશ અધ્યયન હોવાથી આ સૂત્ર “દશવૈકાલિક” કહેવાય છે.

શ્રી. મનક મુનિજીના સ્વર્ગ ગમન પછી શ્રી. સ્વયંભવસૂરીશ્વરજી મહારાજ આ શ્રી.દશવૈકાલિક સૂત્રને સંહરી લેતા હતા, પણ ભાવી તેમજ સામ્પ્રતન સાધુ સાધ્વીને અત્યંત ઉપકારક નિવરણે એવી શ્રી. સંઘની અભ્યર્થનાથી, તેઓશ્રીએ આ સૂત્રને કાંચમ રાખ્યું, જે અદ્યાવધિ અખંડ ધારણે ચાલ્યું આવ્યું છે અને જે સૂત્ર સાધુ સાધ્વીને દીક્ષા આપ્યા પછી તુરત ભણાવવામાં તેમજ શુદ્ધ આત્મા તેના જ યોગોદ્ધવહન કરાવવામાં આવે છે.



# મોક્ષમાં લોકોત્તર ગમન થતું નથી ?

લેખક

\* શ્રીગુત શંકરલાલ ડાહ્યાભાઈ કાપડયા, પાલીતાણા

“ શ્રી યોગ કૌસ્તુભ ” નામનું પુસ્તક, જે બીલખા કાઠીયાવાડ આનંદાશ્રમ તરફથી જેજનાર અલ્લભૂત મહારાજશ્રી નથુગમશર્મા તરફથી સં. ૧૯૮૯માં બહાર પડેલ છે તેમાં ૫૪ મે પાને સિદ્ધશિલા સંબંધમાં જે લખાણ આલેખવામાં આવેલું છે તે સમીચીન નથી, જેથી આ લેખ લખ્યો છે. મૂળ લખાણની વિગત આ પ્રમાણે છે :—

“ લોકોત્તરમાં સિદ્ધશિલાના મધ્ય ભાગમાં ૩૩૩૩ ધનુષ પરિમાણના પ્રદેશમાં સિદ્ધ પુરૂષે સ્થિતિ કરવી એ મોક્ષ નથી સિદ્ધતું સ્વરૂપ તમે અમૂર્ત માનો છો તેમ તેને નિરવયવ પણુ માનવું જોઈએ. નિરવયવ સૂક્ષ્મતમ પદાર્થ વ્યાપક હોવો જોઈએ; તે એક દેશીય હોય નહિ. સિદ્ધ આકાશમાં રહે છે ને આકાશથી સિદ્ધતું સ્વરૂપ સ્થૂળ છે, એમ જે તમે કહો તે તેમાં પણુ દોષ આવે છે. કેમકે સિદ્ધતું અધિષ્ઠાન જે આકાશ તે સિદ્ધથી વિશેષ સ્થાયી અને અવિકારી કરે છે; જે તમને છૂટ નથી. માટે નિરતિશય વ્યાપક, સૂક્ષ્મતમ ને સર્વ દૃષ્ય પ્રમેયનું અધિષ્ઠાન જે અલ્લ છે તેજ પોતાનું સ્વરૂપ છે, એમ સમજાય. પોતાના આદિ સ્વરૂપમાં સ્થિતિ થાય તે જ વસ્તુવિક છે અને મોક્ષ છે. એટલે મોક્ષમાં લોકોત્તર ગમન માનવું ઉચિત નથી. શ્રુતિ ભગવતી પણુ “ ન તસ્ય પ્રાણા ઉત્ક્રામંતિ ” ( તે જ્ઞાનીના પ્રાણુ લોકોત્તરમાં ગમન કરતા નથી ) એ વચનથી એ જ વાત દર્શાવે છે. યોગના પરિપાકથી સાધકના અતિવાહક દેહની તેના સ્થૂળ શરીરના અલ્લરંધ્રમાં સ્થિતિ થાય ત્યારે તેને પોતાનું સ્થૂળ શરીર મોટા અલ્લાંડ જેવડું જણાય છે. તે પુરૂષાકાર અલ્લાંડને ઉપરનો ભાગ જે ખોપરી તે સિદ્ધશિલા. અલ્લરંધ્ર તે સિદ્ધતું સ્થાનક છે, એમ જે તમે કહો તે જ્યાંસુધી માયાના પરિણામરૂપ અતિવહિક (લિંગ) દેહનો સદ્ભાવ છે ત્યાંસુધી મોક્ષ માનવો એ ઉચિત નથી. પણુ માયિક ભાવનો સર્વથા આત્યંતિક અભાવ થાય ત્યારેજ મોક્ષ સંભવે છે. સાધકને પ્રેતસાહન આપવા માટે સિદ્ધના સ્વરૂપની કલ્પના કરી છે.”

લેખક મહાશયને આધમાં જણાવવાનું કે આપે “ સાધકોને પ્રેતમહન આપવા માટે સિદ્ધના સ્વરૂપની કલ્પના કરી છે ” એમ માનો છો તેવી રીતે સિદ્ધશિલાની કલ્પના કરવામાં આવી નથી, પણુ તે સત્ય છે. જિનગમે જિનેંદ્ર ભગવાને પોતાના કૈવલ્યજ્ઞાનમાં જે બાણ્યુ તે પ્રમાણે કથ્યાં છે, તેથી તે આગમ એટલે પ્રમાણુ વાણી છે. તેમાં કલ્પના કે અસત્ય વાણીને સ્થાન નથી, તે ખાત, વસ્તુસ્થિતિનું પૃથક્કરણ કરવાથી સ્પષ્ટ સમજાય તેમ છે.

જેનો ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય આદિ અણ્ય તત્ત્વો અરૂપી માને છે, અને તે નિરવયવી અને સૂક્ષ્મતમ પદાર્થ હોવાથી તે દ્રવ્યોને ચૈદ રાજલોકમાં વ્યાપક પણુ માને છે. પણુ આત્મદ્રવ્ય જે શરીર વ્યાપી છે તે જ્યારે મોક્ષ ગતિને પામે છે ત્યારે તે સિદ્ધશિલામાં જાય છે; અને પોતાના કેવળજ્ઞાનથી આખું સચરાચર-અલ્લાંડ તે જોઈ

અંક ૪ ]

મોક્ષમાં લોકોત્તર ગમન થતું નથી ?

[૧૪૫]

શકે છે. ભૂત, ભાવિ અને વર્તમાન પણ તેઓ જાણી શકે છે. પણ સચરચરમાં એટલે ચૈદ્ર બ્રહ્માંડમાં તેઓ વ્યાપીને રહે છે તેવી મન્યતા જૈનધર્મ માનના નથી. યુદ્ધિથી પણ વિચારતાં તે માન્યતા બંધ ખેસતી નથી. કારણ કે જો મોક્ષગામી જીવ જો અનંત શક્તિ સામર્થ્યનો ધણી છે તે ચૈદ્ર રાજલોક વ્યાપી હોય તો પછી જગતમાં અનેક નિર્દોષ પ્રાણીઓનો સંહાર થાય છે તે કેમ સંભવે ? સાધારણ રીતે જોઈશું તો એક એ રકામાં સુગંધ વ્યાપી હોય તો અંદર પ્રવેશ કરનારને સુગંધ આવે છે, તો પછી જો મહાન આત્મા સર્વજ્ઞ બ્રહ્માંડ વ્યાપી હોય તો જગતની વિચિત્રતા આમ કેમ દેખાય ? ઉપર જો ધર્માસ્તિકાયાદિ દ્રવ્યો કહ્યાં છે તે અજીવ છે છતાં સકળ બ્રહ્માંડના જીવ અને અજીવોને અનુક્રમે ગતિ, સ્થિતિ અને અવકાશ આપવામાં અપેક્ષા કારણ થાય છે, તો પછી જીવ જો સકળ બ્રહ્માંડ વ્યાપી હોય તો પછી તે કેમ નપુંસકપણે પડી રહેતા હશે ? માટે આ માન્યતા યુદ્ધિથી પણ કલ્પી શકાય તેમ નથી.

આપણે ઉચ્ચે આકાશ જોઈએ છીએ તે શું છે ? આકાશમાંથી તારાઓ ખરે છે, તારે તે પથરના રૂપમાં જમીન ઉપર પડે છે. તો પછી સિદ્ધશિલાને ચૈદ્ર રાજલોકની ઉપર માનવાનાં શો વાંધો આવતો હશે, તે સમજાતું નથી. વળી જીવને સ્વભાવ ઉર્ધ્વ-ગામી છે, જ્યારે પુદ્ગલોનો સ્વભાવ અધોગામી છે. જીવ જેમ જેમ પાપ કરે છે તેમ તેમ નીચ ગતિમાં, નીચી પૃથ્વીમાં એટલે નરકમાં જાય છે અને પુણ્ય કરે છે તેમ તેમ ઉચ્ચ ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે. જ્યારે ઘણી પુણ્યની રાશિ એકઠી થાય છે ત્યારે ઉચ્ચે દેવલોકમાં વાસ કરે છે અને જો તદ્દન કર્મક્ષય કરે તો મોક્ષમાં જાય છે. તો પછી મોક્ષ પામનાર જીવ સાથી ઉચ્ચ પદ પ્રાપ્ત પાછા પાછા કાલ્પરૂપી નરકમાં શું કરવા જાય ? તે સંભવી પણ કેમ શકે ? તેના માટે શું સ્થાન ન હોઈ શકે ? કર્મભળને ટાળી મોક્ષ પામે છે, તો પાછો કર્મમલમાં લપેટાયા શું કરવા પાછો જાય ? જ્યારે તુંબડા ઉપરથી માટીના લેપને મેલ જતો રહે છે, ત્યારે તે પૃથ્વીની સપાટી ઉપર ઉચ્ચે આવે છે. જોને કર્મ મલ ચોટ્યો હોય તે નીચે જાય બાકી તો ઉચ્ચે ચઢેલો જીવ પાછો સસારમાં વ્યાપી માનવો એ પણ યુદ્ધિમાં નહિ સમજાય તેવી ખબત છે.

જૈનશાસ્ત્રમાં વ્યાપ્ય અને વ્યાપકપણું કેવી રીતે માનેલું છે તે આ નીચેની ગાથાથી સ્પષ્ટપણે સમજાશે:—

વ્યાપ્યવ્યાપકભાવત્ત્વં, સાપેક્ષાતઃ સ્ફુટં મતમ્ ।

નિત્યાનિત્યપ્રવાદાનાં, સમાસો જૈનદર્શને ॥

- ચોગદિપક-આચાર્ય યુદ્ધિસાગરસરિ કૃત

જૈનદર્શનમાં વ્યાપ્ય અને વ્યાપકપણું સપેક્ષાથી સ્પષ્ટ માનેલું છે તેમાં નિત્યવાદ અને અનિત્યવાદનો સમાવેશ થાય છે. ચૈદ્ર રાજલોક એટલે ચૈદ્ર પૃથ્વી જો સાત નીચે છે અને સાત ઉચ્ચે છે તેનો તો કોઈના કોઈ રૂપે બધા રવીકર કરે છે તો પછી સિદ્ધનું સ્થાન સિદ્ધશિલા માનવામાં શું અડચણ આવતી હશે ?—તેની સમજ પડતી નથી. જો સિદ્ધશિલા માનવામાં દુષણ આવતું હોય તો પછી સિદ્ધોત્તું વાસ્તવિક દુષણ વગરનું સ્થળ પણ બતાવવું જોઈએ.

હવે સિદ્ધશિલા સંબંધમાં શાસ્ત્રનું શું લખાણ છે તે જોઈએ. પ્રથમ તો લેખક

મહાશય જે 'લોકાયના સિદ્ધશિલાના મધ્ય ભાગમાં ૩૩૩૩ ધનુષ પરિમાણના પ્રદેશમાં સિદ્ધ પુરુષોએ સ્થિતિ કરવી એ મોક્ષ નથી" આ પ્રમાણે સિદ્ધના ક્ષેત્રનું સમગ્ર પ્રમાણ આપે છે તે સમીચીન નથી, તે આ નીચેના લખાણથી સમજાશે:—

દ્વવપમાણે સિદ્ધાણે જીવદ્વાણિ હુંતિ ણંતાણિ ।

લોગસ્સ અસંવિજ્જે ભાગે હ્કોય સઘ્વેવિ ॥—નવતત્ત્વ

ગાથાર્થ. દ્રવ્ય પ્રમાણ દ્વારમાં ( દ્વાર વડે વિચારતાં ) સિદ્ધ પરમાત્માના જીવદ્રવ્યો અનંત છે અને ભાગ દ્વાર વડે વિચારતાં લોકના અસંખ્યાતા ભાગમાં એક સિદ્ધ અને સર્વસિદ્ધ પણ છે.

વિશેષાર્થ સિદ્ધના જીવે અનંત છે. કારણકે જઘન્યથી એક સમયને અંતરે અને ઉત્કૃષ્ટથી છ માસને અંતરે અવશ્ય કોઈ જીવ મોક્ષમાં જાય છે એવો નિયમ છે. તેમજ એક સમયમાં જઘન્ય એક અને ઉત્કૃષ્ટથી એકસો આઠ જીવો મોક્ષ જાય છે, એ પણ નિયમ છે. એ પ્રમાણે અનંતકાળ અતીત થઈ ગયો છે માટે સિદ્ધના જીવો અનંત છે. અન્ય દર્શનીઓ જે સદાકાળ ઇશ્વર એક જ છે એમ કહે છે તે ( આ ખીજ દ્વારની પ્રરૂપણથી ) અસત્ય છે તેમ જાણવું. ( શ્રીશંકરાચાર્ય એકાંત આત્માને વ્યાપક માને છે અને તે સર્વપ્રાણીઓનો એક આત્મા માને છે તે પણ આ ઉપરથી માલમ પડશે કે સમીચીન નથી. ) તથા ક્ષેત્રદ્વારમાં વિચારતાં સિદ્ધના જીવો લોકના અસંખ્યાતા ભાગ જેટલા ક્ષેત્રમાં રહ્યા છે. કારણકે એક સિદ્ધનો અવગાહના જઘન્યથી એક હાથ આઠ આંગળા હોય છે અને ઉત્કૃષ્ટથી એક ગાઉનો છઠ્ઠો ભાગ એટલે ૩૩૩ ધનુષ અને અત્રીસ આંગળા અર્થાત્ ૧૩૩૩ હાથ અને આઠ આંગળા એટલી ઉંચી અવગાહના હોય છે. અને એ ક્ષેત્ર ચૌદરાજલોકના અસંખ્યાતમા ભાગ જેટલું જ છે. માટે એક એક સિદ્ધ પણ લોકના અસંખ્યાતમા ભાગમાં રહ્યા છે. તથા સર્વસિદ્ધને આશ્રયી વિચારીએ તો પીસ્તાલીશ લાખ યોજનગણી સિદ્ધશિક્ષા પૃથ્વી પર એક યોજનને અંતે પીસ્તાલીશ લાખ યોજન તિર્યક ( આડા ) વિસ્તારવાળા અને ૬ ( એક ષષ્ટમાંશ ) ગાઉ ઊર્ધ્વ પ્રમાણુ જેટલા આકાશ ક્ષેત્રમાં સિદ્ધના જીવો અલોકની આદિ અને લોકના અંતને રૂપશી રહ્યા છે, તે સર્વ ક્ષેત્ર પણ લોકના અસંખ્યાતમા ભાગ જેટલું છે. માટે સર્વ સિદ્ધ પણ લોકના અસંખ્યાતમા ભાગમાં રહ્યા છે. એ પ્રમાણે ક્ષેત્ર દ્વાર કહેલું છે. અન્ય દર્શનીઓ જે કહે છે કે ઇશ્વર એક જ છે અને તે પણ આ સચરાચર ( ત્રસ સ્થાવર જીવ મય ) જગતમાં સર્વ વ્યાપીને રહ્યા છે તે ( આ ખીજ દ્વારની પ્રરૂપણથી ) અસત્ય એમ જાણવું.

—નવતત્ત્વ પ્રકરણુ સાર્થ. શ્રી જૈન શ્રેયસ્કં મંડળ - મહેસાણા.

લેખક મહાશય ન તસ્ય પ્રાણા ઉત્ક્રામંતિ ( તે જ્ઞાનીના પ્રાણુ લોકોત્તરમાં ગમન કરતા નથી ) એ શ્રુતિ ભગવતીનું સૂત્ર આપી પોતાની આખતને પુરવાર કરે છે તે પણ ઘટી શકતું નથી. આ સૂત્રના હવે આપણે પરમર્શ કરીએ. આ સૂત્ર જેતાં સમજાય છે કે પ્રાણુ જે અહુવચન આણુ છે તે સત્ય છે. જીવને પાંચ ઇન્દ્રિય, ત્રણ બળ ( મન, વચન, કાય ) અને શ્વાસોશ્વાસ તથા આયુષ્ય એમ દશ પ્રાણુ છે. અને તે જીવ ખોળીઆમાંથી મુક્ત થતાં પંચભૂતોમાં ભળી જાય છે; અને લોકોત્તર ગમન કરતા નથી. તે ખીના તદ્દન સાચી છે. જે પ્રાણુને શુદ્ધ પરમાત્મા તુલ્ય આત્મા માનવામાં આવે તો



અંક ૪ ]

મોક્ષમાં લોકોત્તર ગમન થતું નથી ?

[૧૪૭]

તે સત્યસચર વ્યાપ્ત રહી શકતો નથી, તેમાં ઉપર બતાવ્યા પ્રમાણે દુષણો સમાએલાં છે. માટે આ શ્રીન ભગવતીનો અર્થ ઉપર પ્રમાણે ઘટી શકે છે. બાકી બીજી રીતે ઘટી શકતો નથી. માટે આ ઉપરથી પણ સમજી શકાય છે કે મોક્ષગામી જીવો લોકમાં વ્યાપ્ત નથી. તેઓ સિદ્ધશિલા ઉપર રહે છે અને તેમનું ગમન થાય છે. વળી મોક્ષગામી જે શબ્દ છે તે શબ્દ જ ગમન સૂચવે છે. આપણે પણ વારંવાર મોક્ષમાં જનાર એમ કહીએ છીએ તો પછી જે આ લોકમાં રહેનાર હોય તો “જનાર” શબ્દ શું કરવા વાપરીએ ? તે પણ બતાવી આપે છે કે મોક્ષે જનાર ગમન કરે છે અને તે સિદ્ધશિલા ઉપર રહે છે.

વળી ઉપર્યુક્ત લેખમાં લખવામાં આવ્યું છે કે “યોગના પરિપાકથી સાધકના અતિવાહિક દેહની તેના સ્થૂળ શરીરના અક્ષરંધ્રમાં સ્થિતિ થાય ત્યારે તેને પેતાનું સ્થૂળ શરીર મોટા અક્ષાંક જેવડું જણાય છે. તે પુરુષાકાર અક્ષાંકને ઉપરનો ભાગ જે ખોપરી તે સિદ્ધ—શિલા ને અક્ષરંધ્ર તે સિદ્ધનું સ્થાનક છે એમ જે તમે કહો તો જ્યાંસુધી માયાના પરિણામરૂપ અતિવાહિક (લીંગ) દેહનો સદ્ભાવ છે ત્યાંસુધી મોક્ષ માનવો ઉચિત નથી” જૈનધર્મમાં ચૈદ્ર રાજલોક અને તે ઉપર સિદ્ધશિલાનું સ્વરૂપ બતાવવાની ખાતર પુરુષાકાર—આકૃતિની જે રચના કરવામાં આવી છે—તેનું જે ચિત્ર દોરવામાં આવ્યું છે તે ચૈદ્ર રાજલોક અને સિદ્ધશિલા કેવી રીતે આવેલાં છે તેના સ્વરૂપની માહિતી ખાતર જ આલેખવામાં આવ્યું છે તેથી કરી સિદ્ધના જીવો આવડું મોટું શરીર કરે છે અને અક્ષરંધ્રમાં રહે છે તેવી માન્યતા માનવી એ તદ્દન ભૂલભરેલી છે. પુરુષના દેહમાં તેવી રચના છે તેથી તેને પુરુષાકાર આકૃતિ દોરવામાં આવી છે.

સમાન આકૃતિઓ બતાવવા જગતમાં ઘણાં ચિત્રો દોરવામાં આવે છે, પરંતુ તેથી કરી એમ સમજવાનું નથી કે સમાન આકૃતિઓ તદ્દરૂપે રહે છે. સિદ્ધ ભગવાનને શરીર આદિ કાંઈ પણ હોતું નથી. તે નીચેની આગમ ઉદ્ધરિત ગાથાથી સમજાશે.

સિદ્ધાનાં નાસ્તિ દેહો ન આયુઃ કર્મ ન પ્રાણયોનયઃ ।

સિદ્ધાણ નસ્થિ દેહો ન આઝ કર્મ ન પાણજાનીઓ ॥

મુક્ત જીવોને નથી શરીર, નથી આયુષ્ય અને કર્મ, નથી પ્રાણ અને યોનિઓ.

સિદ્ધશિલાનો ધન્કાર કરવાથી પરિણામ એ આવ્યું લાગે છે કે પરમાત્મા જે નિષ્કામી અને નિષ્ક્રિય છે તેને કેટલાક સનાતની આચાર્યો જગતકર્તા માનવા લાગ્યા. વળી જે સિદ્ધો “અપુણ્યરાવિતિ” એટલે જેમનું પુનરાગમન છે નહિ તે ભગવાનોએ અવતારો લીધા તેમ માન્યતા પણ ઉપસ્થિત થઈ અને કેટલાક તેમના ને તેમના સંપ્રદાયોમાંથી નિષ્ણુઓએ તેનો વિરોધ પણ કર્યો. આમ વિતંડાવાદ એકને એક સંપ્રદાયમાં ઉપસ્થિત થયો.

આ માટે જૈન શાસ્ત્રોમાં ન્યાયઃ પુરસ્સર ધણું લખાણ આપવામાં આવેલું છે, પરંતુ તેને વિષયાંતરરૂપ ધારી અન્ને રચન આપ્યું નથી. આથી અમારા જૈનેતર સાક્ષર બંધુઓને વિનતિ કે તે મહાશયો આ બાબતનું સૂક્ષ્મ રીતે અવલોકન કરશે અને સત્યા-સત્ય શું છે તેનું ન્યાયયુક્તિથી તોલન કરી સત્ય હકીકતને સ્વીકૃત કરશે

## વસ્તુપાલના દાદા સોમનો શિલાલેખ

આ શિલાલેખ શ્રી પાટણ વિદ્યાર્થીમંડળ તરફથી, અભ્યાસગૃહના મકાનમાં ચાલતા 'કલા સંગ્રહસ્થાન'માં છે. તે એક મોટી અષ્ટાષ્ટક કુંભીની નીચેની પાટલીમાં કોતરેલો છે. કુંભી ચારસપહાણની આશરે ૨૩ ફૂટ જાડી અને ૨ ફૂટ ઊંચાઈની છે. તેની નીચે દરેક આબુએ લગભગ ૬ ઈંચ પહોળી અને ૧ ફૂટ લાંબી પાટલીમાં આ લેખ ૬ આબુએ પ્રાચીન સંસ્કૃત ભાષામાં કોતરવામાં આવ્યો છે.

આ કુંભી એક કણુખીના ધરમાંથી મળી આવી છે. તેની નીચે ખાંડણિયો કોરેલો છે અને તે કણુખી પણ તેનો ખાંડણિયા તરીકે ઉપયોગ કરતો હતો. કેટલાક સંજોગોને વશ થઈ તે કુંભી અહાર કાઢતાં તેની ઉપરનો શિલાલેખ જોવામાં આવ્યો. તેથી તે કુંભીને લાવી અહીંના કલા સંગ્રહસ્થાનમાં રાખવામાં આવી છે.

આ લેખમાંનો પહેલો શ્લોક સુકૃતકીર્તિકલ્લોહિની નામના સંસ્કૃત કાવ્યમાંનો ૧૦૫ મો શ્લોક છે. બાકીના બીજા બે શ્લોકો નવીન હોવાનું જણાય છે. કદાચ કોઈ અપ્રસિદ્ધ કાવ્યમાંના કે શિલાલેખમાંના હશે એમ અનુમાન થાય છે. વસ્તુપાલનો દાદા સોમ સિદ્ધરાજનો પ્રાપાંચ્યક્ષ (કર્મસચિવ) હતો એમ કીર્તિકૌમુદી, સુકૃતસંકીર્તન, નરનારાયણાનંદ વગેરે કાવ્યો ઉપરથી જણાય છે. તે ધર્મકાર્યમાં કુશળ, જ્ઞાનેશ્વરી, સદ્ગુણવાળો અને વિદ્વાન હતો. આ શ્લોકો પણ એમ સૂચવે છે. આ કુંભી વસ્તુપાલના કોઈ રાજમહાલય કે દેવમંદિરના હશે અને તે પ્રાસાદની દરેક કુંભી ઉપર આવે શિલાલેખ કોતરવામાં આવ્યો હોઈ તેમાંની આ એક કુંભી હોય એમ અનુમાન કરીએ તો તે અસ્થાને નહિ ગણાય. આખો શિલાલેખ નીચે પ્રમાણે છે:—

દેવ સંવત્ ૧૨૮૪ વર્ષે ॥ વિશ્વાનંદકરઃ સદા ગુરુરુચિર્જામૃતલીલાં દધૌ,  
સોમશ્ચારુપવિત્રચિત્રવિકસદેવેશધર્મ્મોન્નતિઃ । ચક્રે માર્ગણપાણિશુક્તિકુહરે  
યઃ સ્વાતિવૃષ્ટિરજૈર્મુક્તૈર્મૌક્તિકનિર્મલં શુચિ યશો દિક્કામિનીમંડનં ॥ ૧ ॥ યુક્તં  
ય.....સોમસચિવઃ કુંદેન્દુશુભૈર્ગુણૈરિન્દ્રઃ સિદ્ધનૃપં વિમુચ્ય સુકૃતી  
ચક્રે ન કંચિદ્વિમું । રંગમદપ્રદચ્છદમદઃ શ્રીસન્નપદ્મં કિમુ, સ્વોહ્લાસાય  
વિહાય ભાસ્કરમહસ્તેજોન્તરં વાંછતિ ॥૨॥ પર્યૈષીદસૌ સીતામવિશ્વામિત્ર-  
સંગતઃ । અસૂત્રિતમહાધર્મ્મલાઘવો રાઘવોઽપરઃ ॥ ૩

આ શિલાલેખનો ભાવાર્થ અહીં આપવામાં આવ્યો છે.

વિશ્વને આનંદ કરનાર, હૃદયમાં શુભ પ્રત્યે જેનો પ્રેમ છે, તેમજ વાહણના જેવી લીલાને ધારણ કરનાર, સોમ કે જે (પેતે) પવિત્ર છે તેમજ ધર્મોન્નતિના વિકાસ પ્રત્યે જેને પ્રેમ છે તેણે માગણોના લાઘવમાં ધીપમાં જ્ઞાનરૂપી સ્વાતિવૃષ્ટિ કરી છે. તેથી તેનો યશ દિશાઓરૂપી સ્ત્રીઓનું મંડન કરે તેવો મોતીના જેવો નિર્મળ તથા પવિત્ર છે. (૧)

જે સોમ સચિવ મોગરાના ચંદ્ર જેવો શુભગુણવાળો હતો. જેણે સિદ્ધરાજને મૂકી બીજા કે જ્ઞાને પોતાનો માલિક (રાજા) બનાવ્યો નહોતો. જેવી રીતે લક્ષ્મીના નિવાસસ્થાનરૂપી કમળમાં રહેલો ભમરો કમળને ઉદ્ધાસિત કરવા માટે સૂર્ય સિવાય બીજાની ઝંખના કરતો નથી તેમ આ સોમ મંત્રી પણ સિદ્ધરાજ સિવાય બીજા જ્ઞાને પોતાનો પ્રભુ માનતો નથી. (૨)

તેણે મહાધર્મ પાળ્યો હતો તેથી તે બીજા રાઘવ (રામચંદ્ર)ના જેવો લાગતો હતો. તે એવી સીતા સાથે પરણ્યો હતો કે જે વિશ્વામિત્રના સંગ (ઉપદેશ) વગરની હતી. (૩)

કનૈયાલાલ ભાઈશંકર દવે—'અભ્યાસ ગૃહપત્રિકા', વર્ષ ૯, અંક ૩.

## पं० इन्द्रचंद्रजीसे

लेखक:—मुनिराज श्री ज्ञानविजयजी

अब दिगम्बर मुनिओंके अग्राह्य-ग्रहण के प्रमाण देखिये:—

दिगम्बर मुनि कच्चे-सचित्त पानीको अचित्त बोलकर पीते हैं। जैसे कि—

पाषाणस्फोटितं तोयं, घटीयंत्रेण ताडितं ।

सद्यः संतप्तवापीनां, प्रासुकं जलमुच्यते ॥

देवर्षीणां प्रशौचाय स्नानाय गृहमेधिनाम् ॥

अर्थात्—जो जल पत्थरसे टकराया हुआ हो, अरहट्टसे ताडित हो और सूर्यकी किरणोंसे तत्काल उष्ण हुआ बावडीका जल, ये सब देवर्षि (एक विहारी या मासांपवासादिके धारक महामुनियों) के शौच और गृहस्थों के स्नानके लिये प्रासुक माना गया है।

—जैनदर्शन, व० ४, अं० ४, पृ० १५८ ॥

दि० मतमें आकाशचारणऋद्धिप्राप्त मुनि देवर्षि माने जाते हैं।

—चारित्रसार, पृ० २२, प्रवचनसार पृ० ३४३; जै० द०, व० ४, पृ० ३३१।

मैंने पहिले लेखमें दि० मतके प्रासुक पानी के प्रमाण लिख दिये हैं।

सारांश यह है कि दि०समाज सचित्त पानीको भी प्रासुक यानी ग्राह्य मानता है। दि०मुनिओं के इस शिथिलाचारका परिणाम यह आया है कि आज कई भागमें, उपवास करनेवाले दि०जैन उपवास में सिर्फ पानी ही नहीं, किन्तु बादाम आदि को ठंडाई (लसी) को पीते हैं।

दि० मुनि सचित्त फलको भी प्रासुक मानते हैं। जैसेकि—अतिथि संविभाग यानी दिगम्बर सम्मत वैयावृत्य के पांच अतिचार माने जाते हैं माने सचित्त निक्षेप वगैरह मुनिओंके लिये अग्राह्य है।

—तत्त्वार्थ, अ० ७, सू० ३६; राजवार्तिक पृ० २९१, रत्नकरंड श्लो० १२१  
राजमल्लजीकी लाटी संहिता श्लो० २२७, २२८।

यद्यपि जैनमुनि सचित्त निक्षिप्त व सचित्त पिहित आहारको अप्रासुक मान कर लेते नहीं हैं किन्तु दि०मुनि फल बीज वगैरहको प्रासुक माने अचित्त ही मानते हैं और उनके संसर्गवाले आहार को लेना योग्य मानते हैं।

पं० आशाधरजीने 'अनगर धर्माभृत' अ. ५, श्लो. ३९ में १४ मल बताये हैं जिसमें कन्द, (सुरण आदि), मूल (मूली अदरख इत्यादि), बीज, फल (आम, बेर), कण (गेहूं आदिके दूकडे) और कुण्ड, (भीतरसे अपकव चावल) गिनाये हैं। ये सब मल हैं किन्तु अप्रासुक नहीं हैं।

कन्दादिषट्कं त्यागाहं, इत्यत्राद्विभजेन्मुनिः ।

न शक्यते विभक्तं चेत्, त्यज्यतां तर्हि भोजनम् ॥ ४१ ॥

संस्कृत टीका—++++कन्दादिषट्कं मुनिः पृथक् कुर्यात् ॥ माने दिगम्बर मुनि कन्दादि छे को दूर हटाकर आहार ले सकते हैं। यदि ये सचित्त होते तो दि. मुनि उस सचित्त निक्षिप्तादि दोषयुक्त आहारको हरगीज नहीं ले सकते।

मूलाचार पिण्डशुद्धि अधिकार गा० ६५ की टीका में भी उपरसा ही विधान है।

—जैनदर्शन व. ४ अं. ४ पृ. १५३ ॥

सारांश—दिगम्बर मुनि पक्व फल और शाक आदि वनस्पतिको अप्रासुक ही मानते हैं फिर भी वेग्राह्य हैं। इस वनस्पतिके विषय में दिगम्बरी मत अधिक देखना हो तो 'खंडेलवालहितेच्छु' ता. १९-८-१९३६ इस्वीके अंक २१ में ब्यावर निवासी दिगम्बर ब्रह्मचारी महेन्द्रमिहका "वनस्पति आदि पर जैन सिद्धांत" शीर्षक लेख पढ़ना चाहिये। हमें तो विश्वास है कि आजीवक मतका यह सारा अनुकरण ही है।

दिगम्बरी "जैनहितैषी भा. ५ अं ९. पृ. १७" में "धर्मका अनुचित पक्षपात" लेख छपा है उसमें वि. सं. १६३६ में दि० काष्ठासंघी आ० भूषण लिखित दिगम्बरीय मूलसंघका कुछ इतिहास "दिया है जिसका सारांश इस प्रकार है—

"एक बार काष्ठासंघी अनंतकीर्ति नामके आचार्य गिरनारको यात्रार्थ गये। वहां उन्होंने पद्मनंदी (कुंदकुंदस्वामी) आदि निर्दयी पापी कापालिकोंको देखा और उन्हें संबोध श्रावकके व्रत दिये। आचार्यने उसका (कुंदकुंदस्वामीका) नाम मयूर-श्रृंगी रखा। बादको उसने मंत्रवादसे नंदी-संघ चलाया और अपना पद्मनंदी नाम प्रसिद्ध किया। एक समय उज्जैनमें उसने गुरुसे विवाद किया और पत्थरकी शारदाको जबर्दस्ती (बलात्) बुलवा दिया। तब उसका बलात्कार गण और सरस्वती गच्छ प्रसिद्ध हुआ। आदि++++ बादमें उसने मंत्र सिद्धिके निमित्त एक मयूरको मार डाला। तब मयूर मरकर व्यंतर देव हुआ। उसने बहुत उपद्रव मचाया तथा त्रास दिया। अन्तमें उसके कहनेसे मयूरपिच्छ धारणकर पिंड लुड़ाया उस दिनसे मूलसंघका नाम मयूर-संघ हुआ"

—जैनदर्शन, व० ४, अं. ७, पृ० ३२०।

पंडितजी! इस दिगम्बर भट्टारयकृत कथाको पढ़कर दिगम्बर मुनि मयूरपीच्छ क्यों रखते हैं उसे सोचें। आपको स्वयं ज्ञात हो जायगा कि-वस्त्ररहित होने परभी मुनिको मयूरपीच्छ रखना यह कितना पवित्रताका नमूना है.? दि० समाज तो इस आपत्तिके कारण मयूर-पीच्छको पवित्र एवं प्रासुक ही मानता है।

दिगम्बर मतकी उत्पत्ति, इस अभिमान व एकान्त वादका ही परिणाम है। प्र० आ० ने० उपाध्ये M. A. दिगम्बर विद्वान भी लिखते हैं कि—आचार शास्त्रमें वर्णित उत्सर्ग और अपवाद मार्ग के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साधु समुदायके इस श्रमसाध्य प्रबन्धने मतभेदके लिये बड़ा अवसर दिया, जब किसी प्रधान आचार्यका स्वर्गवास हो जाता था तब सर्वदा संघमें कूट पडनेका भय बना रहता था ! दिगम्बर संप्रदायमें संघभेद होनेका यही मुख्य कारण है। इसके सम्बन्धकी घटनाओंको जाननेके लिये पुगातत्व संग्रहका (Epigraphical Records) सावधानीसे अध्ययन करनेकी आवश्यकता है।

—जैनदर्शन, व० ४, अं ७, पृ० २९१

दिगम्बर संघका प्रारंभ से आज तकका यह इतिहास-सार है। पंडितजी इसे तो अग्राह्य मानते ही नहीं।

यद्यपि दि० विद्वान् श्वे० उत्सर्ग और अपवाद पर आक्षेप करते हैं किन्तु दि० मुनि भी अपवाद और प्रायश्चित्तसे पर नहीं हैं। जैसेकी दि० छेदपिंडमें उल्लेख है हि—जंतारूढो जीणि अफुसंतो (४९) अण्णेहिं अमुणिंदं मेहुणं (५१) परेहिं विण्णादमेकवारम्मि (५२) इंदय खलणं जायदि (४८) दिनशयन (६०) रत्तीप चरिया (७२) सूर्योदये आहार (७३) वगैरह।

इन पाठोंका अर्थ नहीं करना ही अच्छा है। पंडितजी इन पाठोंको सोचे वादमें देखे कि दि. साहित्यमें कितनी शिथिलता है। ऐसी स्थिति में हरएक धर्मको उत्सर्ग अपवाद और प्रायश्चित्त अनिवार्य ही हो जाते हैं।

दिगम्बरोंने स्त्रीसमाजके लिये अवेदी तीर्थंकरकी अंगपूजा पापरूप मानी है जबकि दिगम्बर मुनिकि चरणपूजा, स्पर्श, वस्त्रसे देहप्रोक्षण और शुश्रूषा वगैरेह लाभरूप माने हैं। दि० मुनिोंने जिनागमको छोडकर यह लाभ उठाया। इससे अधिक कौनसी शिथिलता हो सकती है।

दिगम्बरी मुनि सिर्फ वस्त्रके लिये अपरिग्रही बनते हैं। इसके अलावा वे मठ, गांव, गद्दी और धनको बड़े चांवसे जमा करते हैं। दिगम्बरीय शिलालेख, ताम्रपत्र और दानपत्रसे इसके अनेक प्रमाण पाये जाते हैं, जैसेकी—

कलि आचार्यके शिष्य विजयकीर्ति, उसके शिष्य अर्ककीर्तिको उनके मठके लिये दान दिया। जो नन्दीगण और पुत्राग मूल संघके अनुयायी यापनीय थे वगैरह।

—जैनदर्शन, व० ४, अं ७, पृ० २९४

दि० विद्वान् बनारसीदासजी भी बताते हैं कि—

“माया त्यागी होई जो दानी कहई गोरख तीनों अज्ञानी ॥”

तेरापंथी दिगम्बर काव्य वस्थाग्रन्थ, पं. पन्नालालजी सिंधीकृत “विद्वद्जनबोधक” पृ. १७६ में रात्रिभोजी दिगम्बर मुनिओंको निर्ग्रन्थ बताये हैं। दिगम्बरीय छंद शास्त्रमें भी दि. मुनिओंको रात्रि भोजनके प्रायश्चित्त हैं, जैसेकि—

रत्ति गिलाणभत्ते चउधीह (गा. २९)

टीका—रात्रौ व्याधियुते चतुर्विधाहारे षष्ठं++रात्रौ चर्याप्रविष्टः मूलं गच्छति, न तस्य पंक्तिभोजनमिति ।

यहां प्रश्न यह होता है कि—दिगम्बर मुनि वस्त्र या पात्रको रखते ही नहीं फिर आहार कैसे करते होंगे? इस विचारणामें उनकी शिथिलता का पूरा पता लग जाता है। मानना पड़ेगा कि उन्हें रात्रिको भी आहार प्राप्ति बिना पात्र भी आसान होती होगी। टीकाकारने और भी एक महत्त्व की बात लीख दी है कि—दिगम्बर मुनि रात्रिको आहार करे, किन्तु आहार के निमित्त गावमें जाय तो मूलच्छेद करना और उसको पंक्तिभोजन से बहार कर देना ।

पाठक समझ गये होंगे कि—दिगम्बर मुनि दिनको गाव में आहार के लिए जाते हैं, भिन्न भिन्न घर में अलग अलग खडे हो कर आहार लेते हैं जब कि वे अपने स्थान में रातको आसानी से आहार पा सकते हैं और साथ साथ में पंक्तिभोजन के नियम में भी व्यवथित रहते हैं। खेर।

दिगम्बर समाजके इन अग्राह्य-ग्रहण प्रमाणों से पं० इन्द्रचन्द्रजीका जी भर जायगा। यदि कुछ शेष रह गया हो और पंडितजी पूछेंगे तो उनको और और भी प्रमाण सूनने का नसीब हो जायगा।

पंडितजी औरोंको अन्ध श्रद्धा छोड़ने की शिक्षा देते हैं (पृ० ४७२) किन्तु मैं तो पंडितजी से सप्रेम सूचन करता हूं कि—वो भ० महावीर-स्वामीके १३०० वर्षके बाद बनाये हुए दिगम्बरीय शास्त्रोंको “वीरवाणी” मानने के अभिनिवश को हटाकर दि० शास्त्रकों पढ़े; उन्हें स्वयं ज्ञात हो जायगा कि वे कैसी दयनीय दशा में खडे हैं।



## मांडवगढ संबंधी लेख

संग्राहक-नंदलालजी लोढा-बदनावर (मालवा)

[ स्वर्गस्थ यतीवर्य माणकचंदजी इन्दोर निवासीकृत पुस्तकसे उद्धृत ]

(१८) संवत् १५१५ वर्षे श्री श्री वंशे । से । श्री नागमल भ्रातृ से । श्री महाभा । श्री ललनादे पुत्रसे ॥ श्री कमलसीसु० श्री विहणसीकेन लाडी सहितेन स्व श्रेयोर्थ श्री अंचलगच्छे श्री सिद्धांतसागरसूरीणामुपदेशेन ॥ श्री श्री संभवनाथ बिंबं प्रतिष्ठितं च संघेन । श्री मंडपदुर्गे ॥

यह लेख श्वेतपाषाणकी ११ इंच उंची प्रतिमाके पाटलीके पृष्ठ भागमें लिखा है । पृष्ठ ९५ नं. २

(१९) संवत् १६८२ वर्षे मी० वैसाख शुक्लपक्ष दशमी सोमे मंडपाचल-वासीय उकेशज्ञातीय वृद्धशाखायां सा० सुपलद भा० टाकूसुत सा० धर्मदास भ्रातृ सा० वर्मदास भार्या विमलादे सुत सा० जिणदास भा० यसमादे प्रमुख कुटुंबयुतेन श्री मल्लीनाथबिंबं कारापितं तपापक्षे श्री अकबर प्रदत्त

ता० १५-५-३६को इन्हीं प्रतिमाकी लेख नकल हमने उतारी वो इस मुजब है:—

सं. १६८० वर्षे माघ मासे शुक्लपक्षे दशमी सोमे मंडपाचल वास्तव्य उकेश ज्ञातीय वृद्धशाखायां सा० रूपचंद भा० टाकू सु० सा० धर्मदास पुत्र सा० वर्मदास भा० विमलादे सुत सा० जिणदास भा० यसमादे प्रमुख कुटुंब युतेन श्री मल्लीनाथबिंबं कारापितं । तपागच्छे श्री अकबरप्रदत्त जगतगुरु बिरुद्धधारक भ० श्री हीरविजयसूरीश्वर स्तत्पट्टालंकार भ० श्री विजयसेन-सूरीश्वर स्तत्पट्टालंकार भट्टारक श्री विजयदेवसूरीश्वरनिर्देशात् पं. जय-विजयगणिभिः प्रतिष्ठितं-कालश लंछण ।

श्रीमान् मुनिराज श्री यतीन्द्रविजयजीकृत यतीन्द्रविहार दिग्दर्शन-के चौथे भागके पृष्ठ २११ लेख नं० ८० में उक्त प्रतिमाके लेखकी नकल प्रकाशित हुई है उसकी नकल इस मुजब है:—

संवत् १६४७ वर्षे माघ मासे शुक्लपक्षे दशमी सोमे मंडपाचल वास्तव्य उकेश ज्ञातीय सा० रूपचंद भार्या टाकू सुत सा० धर्मदास पुत्र सा० धर्मदास भा० विमलादे पुत्र सा० जिणदास भा० रतनादे पुत्र रत्न कुटुंबयुतेन श्री मल्लीनाथबिंबं कारापितं तपागच्छे श्री अकबर प्रदत्त जगद्गुरु बिरुद्ध धारक भ. श्री हीरविजयसूरीश्वर पट्टालंकार भ. श्री विजयसेनसूरीश्वरस्त-त्पट्टालंकार श्री विजयसेनसूरीश्वर निर्देशात् पं. जयविजयगणिभिः प्रतिष्ठितं ।

जगत गुरु बिरुद्धारक भ० श्री हीरविजयसूरीश्वर स्तत्पट्टालंकार भ० श्री विजयसेनसूरीश्वर भट्टारक स्तत्पट्टालंकार भट्टारक श्री विजयदेवसूरीश्वर निर्देशात् पं० जयविजयगणिभिः प्रतिष्ठितं ॥

यह लेख श्रवे० पा० २१ इंच उंची प्रतिमाकी पाटलीके अग्र भागमें है । पृष्ठ ९६ नं. ८

मांडवगढ जैन मंदिरके कंपाऊंडमें धर्मशालाका खोद काम करते जमीनमेंसे ता. ३-८-१९०७ को नौ मूर्तियां, एक पांच सेर का ताला, दो घट्टी, दो ओरिसे, व लोटे वगैरह निकले थे । पृष्ठ ९५/९६ नं. २।८ ये ९ मूर्तियां वहांके मंदिरमें स्थापन की उसमें नं. १८/१९ उपर्युक्त लेखवाली प्रतिमा है बाकी ७ प्रतिमा बिना लेखवाली होगी ।

(२०) संवत् १५०८ वर्ष आषाढ वदि १ रवौ मंडपवासि श्रीमाल सं. डुंगर धीना वृद्ध भ्रातृ भा० कमलाबाई सुत सखण भार्या मनखत नामन्या सं. पाहू भा० हर्षी पुत्र्या स्वश्रेयसे श्रीआदिनाथ विंवं का० प्र० तपागच्छेश श्री सोमसुन्दर शिष्य श्री उदयनंदिसूरिभिः

यह लेख धातुकी ९ इंची मूर्ति पर हो कर इन्दौर में माणकचन्द्र यतीवाले सराफे के मंदिर में स्थापित है । —पृष्ठ ९४ नं. १

(२१) संवत् १५१७ वर्ष माघ शुदी १० मंडपदुर्गे प्राग्वाट साह कुंपा भार्या सृलेसरि पुत्र साह वरसाकेन भार्या रूपी पुत्र साह लाखा भार्या लहमाई प्रमुखयुतेन स्वपितृश्रेयशे श्री संभवनाथ विंवं का. प्र. तपा श्री रत्नशेखरसूरिपट्टे गच्छनायक श्री लक्ष्मीसागरसूरिभिः

यह लेख उज्जैन के अवंतीनाथ के जैनमंदिर में धातुकी ९॥ इंची मूर्ति पर है । पृष्ठ ९५ नं. ३ ।

(२२) संवत् १५५० वर्ष वै. शु. ३ शनौ मंडपदुर्गवासी श्रीमाल ज्ञातिय मं. सांडा भार्या माऊ सुत मं. चांपाकेन भा. चांपलदे चांपू वृ. भ्रातृ काला मकुंद भगिनी बहू प्रमुख कुटुंबयुतेन स्वश्रेयोर्थे श्री चन्द्रप्रसु विंवं कारितं प्रतिष्ठितं तपागच्छेश श्री सोमसुन्दरसूरि शिष्य श्री जयचंद्र-सूरिपादैः श्रीः ॥

यह लेख उज्जैनके अवंतीनाथके मंदिर में धातुकी पंचतीर्थी पर है । पृष्ठ ९६ नं. ६ ।

२ ये नौ मूर्तियों के बारेमें शिलालेख “श्री जैन सत्य प्रकाश”के वर्ष २ अंक ११ के पृष्ठ ५८० में लेख नं. ८।९का प्रकाशित हुवा है ।



(२३) श्री तपापक्षे भट्टारक श्री विजयदेवसूरिः श्री विजयसिंहसूरिभिः प्रतिष्ठितं ॥ संवत् १६९६ वर्षे माघ मासे कृष्ण पक्षे प्रतिपत्कर्मवाट्यां श्री मंडपदुर्गे श्रीमन्नागपुरीय तपागच्छे श्री पासचंद्रसूरिगुरुभ्यो नमः श्री जयचंद्रसूरिविजये । साह पेता भा. षोषी सुत वसंदेवा भा.—शिवा-लेखा.....तां कारितं मरमुंज.....सोमजी एभिः बिंबं—प्रतिष्ठा-पितं श्रीमाली गोत्रे ।

यह लेख वराणपुर में श्री चन्द्रप्रभुस्वामी की श्वेतपाषाण की २॥ फुट ऊंची मूर्ति पर है । पृष्ठ ९७ नं. ९ ।

(२४) श्री तपागच्छे भट्टारक श्री विजयदेवसूरिः श्री विजयसिंहसूरिभिः प्रतिष्ठित ॥ संवत्—१६९६ वर्षे माघ मासे कृष्ण पक्षे १ तिथौ श्री मंडपदुर्गे । श्रीमन्नागपुरीय तपागच्छे श्री पासचंद्रसूरिगुरुभ्यो नमः भट्टारक श्री जयचंद्रसूरि आ । श्री विजयचंद्रकृते । साह पेता । भा. । खोखी सुत वसंदेवा शिवा । लेखा । एभिः.....

यह लेख वराणपुरमें गोड़ीजीके मंदिरमें पश्चिम बाजू श्वेतपाषाणकी मूर्ति पर है । पृष्ठ ९८ नं. १०

(२५) श्री तपागच्छे भट्टारक श्री विजयदेवसूरिः आचार्य श्री विजयसिंहसूरिभिः प्रतिष्ठितं ॥ संवत् १६९६ वर्षे माघ मासे कृष्णपक्षे प्रतिपत्कर्मवाट्यां चन्द्रवासरे श्री मंडपदुर्गे श्रीमन्नागपुरीय श्रीमद्वृह तपागच्छाधिराज भट्टारक युगप्रधान श्रीपासचंद्रसूरिस्तत्पट्टावतंश श्री श्री श्री विमलचंद्रसूरीणां पट्टा-लंकार श्री विजयचंद्रसूरिअ ॥ वा. श्री विजयचंद्रकृते । साह खेता भार्या षोषी सुत वसंदेवा भा. देवलदे से. शिवा भा । षलाणदे.....

यह लेख वराणपुरके श्री गोड़ीजीके जैन मंदिरमें एक मूर्ति पर है । पृष्ठ ९८ नं ११



## ॥ श्री सरस्वतीस्तोत्रम् ॥

कर्ताः—आचार्य महाराज श्रीमद् विजयपद्मसूरिजी

॥ आर्याच्छंदः ॥

श्रीस्तंभनपतिपार्श्वं नत्वा युरुधर्यनेमिसूरिवरं ।  
 प्रणयामि भक्तिभावः सरस्वतीस्त्रोत्रमुन्नतिदं ॥ १ ॥  
 सद्तिशयान्वितरूपा जिनपतिवदनाब्जवासिनी रम्या ।  
 नयभंगमानभावा प्रभुवाणी साऽस्तु वो वरदा ॥ २ ॥  
 तदधिष्ठायकभावं प्राप्ता श्रुतदेवता चतुष्पाणिः ।  
 श्रीगौतमपदभक्ता सरस्वती साऽस्तु वो वरदा ॥ ३ ॥  
 प्रवचनभक्ता भव्याः यां स्मृत्वा प्राप्नुवन्ति वरबुद्धि ।  
 कमलासने निषण्णा सरस्वती साऽस्तु वो वरदा ॥ ४ ॥  
 विघ्नोत्सर्जननिपुणा—मज्ञानतमोऽपहां विशदवर्णा ।  
 सितवस्त्रमालिनीं तां प्रणौम्यहं भारतीं भव्यां ॥ ५ ॥  
 विशदाभरणविभूषां निर्मलदर्शनविशुद्धबोधवरां ।  
 सुरगीतरतेर्महिषीं नमाम्यहं शारदाजननीं ॥ ६ ॥  
 यस्या ध्यानं दिव्या-नन्दनिदानं विवेकिमनुजानां ।  
 संघोन्नतिकटिबद्धां भाषां ध्यायामि तां नित्यं ॥ ७ ॥  
 प्रस्थानस्मृतिकाले भावाचार्याः निवेश्य यां चित्ते ।  
 कुर्वन्ति संघभद्रं वाणो तां प्रणिदधेऽनुदिनं ॥ ८ ॥  
 श्रुतसागरपारेष्ट—प्रदानं चिंतामणिं महाशक्तिं ।  
 दिव्यांमकांतिदीप्तां, मरालवाहनां नौमि ॥ ९ ॥  
 पुस्तकमालालंकृत—दक्षिणहस्तां प्रशस्तशशिवदनां ।  
 पंकजबीणालङ्कृत—वामकरां भगवतीं नौमि ॥ १० ॥  
 वागीश्वरि प्रसन्ना, त्वं भव करुणां विधाय मयि विपुलां ।  
 येनाप्नुवे कवित्वं, निखिलागमतत्त्वविज्ञानं ॥ ११ ॥  
 ॐ ह्रीं क्लीं वाग्वादिनि, वद वद मातः स्वरस्वति प्रौढे ।  
 तुभ्यं नमो जपन्ति—त्येतन्मन्त्रं सदा भव्याः ॥ १२ ॥  
 मंत्रानुभावसिद्धा, मलयगिरिहैमचंद्रदेवेन्द्रौ ।  
 श्रीवृद्धमल्लपूज्यौ, षष्ठो श्रीवप्पभट्टगुरुः ॥ १३ ॥  
 त्वत्करुणामृतसिक्ता, पते षट् सभ्यमान्यसद्वचनाः ।  
 जाताः शासनभासन—दक्षास्तत्त्वामहं स्तौमि ॥ १४ ॥  
 त्वत्पदसेवायोगो, हंसोऽपि विवेकमान्महीविदितः ।  
 येषां इदि तव पादौ भाषे पुनरत्र किं तेषां ॥ १५ ॥ (अपूर्ण)

## સમાચાર

**કાળધર્મ**—કલકત્તા ખાતે ખરતર ગચ્છીય પ. પૂ. આચાર્ય શ્રી. જિનચંદ્રસૂરિજી મહારાજ ભાદરવા વદી ચૌદસના દિવસે તથા (૨) પાલીતાણુ ખાતે ડોટાવાગાની ધર્મશાળામાં પ. પૂ. મુનિ મહારાજ શ્રી કપૂ-વિજયજી મહારાજ આસો વદી આઠમના દિવસે સવારમાં કાળધર્મ પામ્યા છે.

**સખાવત**—(૧) જામનગરમાં શેઠ શાંતિદાસ ખેતસીએ ઉપશ્રય તથા જ્ઞાનમંદિર માટે રૂપિયા પચીસ હજારનું દાન આપ્યું છે તથા (૨) જામનગરમાં શેઠ સોમચંદભાઈ ધાર-શીએ રૂપિયા દસ હજારની રકમનું, ગુદાં ગુદાં ધાર્મિક કાર્યો માટે. દાન કર્યું છે.

**અવસાન**—જર્મનીમાંના જૈન તત્ત્વજ્ઞાની ડૉ. અબ્યાસી ડો. હર્બન જેકોબીનું ૭૧ વર્ષની ઉંમરે અવસાન થયું છે.

**મદદ માટે અપીલ**—પૂર્વદેશમાં સરાક ગતિના ઉદ્ધાર માટે જે પ્રચાર કાર્ય ચાલી રહ્યું છે, તેમાં મદદ કરવા માટે જૈન ભાઈઓને અધિક કરવા માં આવી છે.

## સ્વીકાર

- ૧ શ્રી વર્ધમાન જૈન સ્તવનમાળા : પ્રકાશક—શ્રી વર્ધમાન જૈન સંગીત મંડળી. મૃત્યુ ખે આના.
- ૨ શારદા પૂજન एवं દીપમાલિકા પૂજન : પ્રકાશક શ્રી જૈન પ્રચાર-કાર્યાલય, અજમેર. મૂલ્ય ૦-૪-૦.
- ૩ સરાકજાતિ ઔર જૈનધર્મ : લેખક તેજમલ બોથરા, પ્રકાશક શ્રી જૈનધર્મ પ્રચારક સમા ૯૬ કેનિંગ સ્ટ્રીટ, કલકત્તા.
- ૪ સરાકજાતિ—લેખક મુનિરાજ શ્રી પ્રભાકરવિજયજી; પ્રકાશક—શિવરાવ કાલિદાસ મહેતા. ઝરિયા (માનભૂમ). ભેટ.
- ૫ સુમાધિત-પદ્ય-રત્નાકર-સંગ્રહક અને અનુવાદક મુનિરાજ શ્રી વિશાલવિજયજી; પ્રકાશક—શ્રી વિજયધર્મસૂરિ જૈન ગ્રંથમાળા, છોટા સરાક, ઉજ્જૈન, મૃત્યુ સત્તા રૂપિયો.
- ૬ હેમચન્દ્ર વચનામૃત-સંગ્રહક અને અનુવાદક મુનિરાજશ્રી જયંતવિજયજી; પ્રકાશક શ્રી વિજયધર્મસૂરિ જૈન ગ્રંથમાળા છોટાસરાક, ઉજ્જૈન. મૃત્યુ આઠ આના.

## પૂજ્ય મુનિરાજેને વિજ્ઞાપિત

આ અંક પહોંચતાં અતુર્માંસ પૂર્ણ થશે, એટલે પૂજ્ય મુનિરાજેને વિજ્ઞાપિત કરવાની કે :—

(૧) હવે પછી આપને માસિક કયાં મોકલવું તેનું નિશ્ચિત સરનામું લખી જણાવવા કૃપા કરશો. અથવા દર મહિને વિહાનના સ્થળનું સરનામું લખતા રહેવા કૃપા કરશો.

(૨) વિહાર દરમ્યાન જુદા જુદા ગામોમાં માસિકના ગ્રાહકો થવાનો લોકોને ઉપદેશ આપવા કૃપા કરશો.

Regd. No. B. 3801

તૈયાર છે!

આજે જ મંગાવો!

શ્રી જૈન સત્ય પ્રકાશ

ની

બીજા વર્ષની પૂરી ફાઈલ

જેમાં

પરમાત્મા મહાવીર દેવના જીવનને લગતા  
અનેક વિદ્વાત્કાર્યો લેખોથી સમૃદ્ધ

શ્રી મહાવીર નિર્વાણુ વિશેષાંક

નામના

૨૨૮ પાનાના દળદાર અંકનો સમાવેશ થાય છે.

ટપાલ ખર્ચ સાથે કિંમત:-

બાંક્યા વગરના બધા અંકોના બે રૂપિયા  
બધા અંકો સાથે બાંધેલાના અઢી રૂપિયા

શ્રી મહાવીર નિર્વાણુ વિશેષાંકનું

છુટક મૂલ્ય:-

ટપાલ ખર્ચ સાથે માત્ર તેર આના

લખો:-

શ્રી જૈનધર્મ સત્યપ્રકાશક સમિતિ

જેશિંગલાઇનો વાડી, ઘીકાંટા,

અમદાવાદ. (ગુજરાત)